हवाई जहाज़ क्यों उड़ते हैं?
मोटरगाड़ी और इंजन को क्या चीज़ चलाती है?
हमारे घरों और कारखानों में बिजली किसलिए आती है?
लोग खाना किसलिए खाते हैं? कभी सोचा है तुमने इस सबका कारण क्या है?

अलेक्सेई क्रिलोव

अलाव से रिएक्टर तक

अनुवादक – योगेन्द्र नागपाल
चित्रकार – प्लतोनोव

А. Крылов

ОТ КОСТРА ДО РЕАКТОРА

на языке хинди

A. Krylov

FROM BONFIRE TO REACTOR

in Hindi

К $\frac{4803010102-319}{031(01)-83}$ 386-83

अनुक्रम

तुमने कभी यह देखा है कि मकान कैसे बनाया जाता है ? ईंटें और कंकरीट के ब्लाक लेते हैं, उन्हें उठाते हैं, मिलाते है और आवश्यक स्थान पर चिन देते हैं।

ईंटें भी और मकान भी लोग बनाते हैं। तरह-तरह की मशीनें, जैसे कंकरीट मिलाने की, उसे ढोने की, उठाने की मशीनें, क्रेनें आदि ये सारी की सारी मशीनें लोगों की मदद करती है।

लोगों को और मशीनों को भी काम करने के लिए – भार उठाने, ढोने, लादने, ढकेलने के लिए शक्ति चाहिए । और काफ़ी शक्ति चाहिए।

मनुष्य में शक्ति कहां से आती है? अब यह बात तो तुम जानते ही होगे, जन्म से ही मा से, दादी से सुनते आये होगे: "खाना नहीं खाओगे, तो शरीर में ताक़त कहां से आयेगी?" यह बात सोलह आने सच है। खाने के साथ ही आदमी ताक़त पाता है, शक्ति पाता है। और हां, खाने के साथ ही एक तरह से "ईंटें" भी पाता है, वह "निर्माण सामग्री" पाता है, जिससे वह बना हुआ है।

अच्छा तो मशीनों को बल कहां से मिलता है? उनका "आहार" क्या है? तुम शायद जानते ही होगे: खनिज तेल, गैस, पेट्रोल, पत्थर का कोयला, दलदली कोयला, मिट्टी का तेल, बिजली – यही सब मशीनों का "खाना" है।

पर तुम कहोगे: "यह क्या बात हुई – कहां तो हमारी स्वादिष्ट रोटी, दूध, मक्खन और कहां काला खनिज तेल या बिजली! इनमें ऐसी क्या एक सी बात है, जो आप इन सबको "खाना" ही कह रहे है?" पहली नजर में लगता है कि इनमें कुछ भी एक सा नही है, लेकिन अगर सोचा जाये तो बहुत कुछ एक जैसा है।

रोटी, मक्खन और दूध भी तथा पेट्रोल, गैस और बिजली भी शक्ति देते हैं।

इस अदृश्य शक्ति को ऊर्जा कहते हैं। ऊर्जा सभी को और सर्वत्र चाहिए, चाहे इंजन बनाना और चलाना हो, चाहे पैंट-कमीज सीनी हो, चाहे राकेट उड़ाना हो या किताब पढ़नी हो – हर काम के लिए ऊर्जा चाहिए। रगों में खून बहे, शरीर हृष्ट-पुष्ट हो, दिमाग ठीक से काम करे – इसके लिए भी ऊर्जा चाहिए।

...हमारे पूर्वजों का जीवन बड़ा कठिन था। उनके चारों ओर ऐसा संसार था, जिसे वे समझते नही थे और जिसमें उनके अनेक शत्रु थे। कदम-कदम पर उन्हें प्राकृतिक विपदाओं का, भूख, ठंड और जंगली जानवरों का सामना करना पड़ता था। उन्हें बस अपने ही बूते पर ऐसे शक्तिशाली शत्रुओं से जूझना होता था।

लेकिन वे अपने फुर्तीले हाथों और तेज टांगों के बल पर ही शत्रु को नहीं [illegible] थे। दौड़ने में तो खूंखार जानवर उनसे तेज थे। मनुष्य का सबसे बड़ा अस्त्र था उसकी तीक्ष्ण बुद्धि।

... बिजली गिरने से पेड़ जल उठा है। हवा चिंगारियां उड़ाती है। और उनसे पास का दूसरा पेड़ जल उठता है। झाड़ी में आग लग जाती है। लाल-लाल लपटे घास पर फैलने लगती है। और लो, सारा जंगल धू-धू करता जलने लगा है, दावानल अपनी होम-लीला करने लगा है। आतंकित जानवर बौखलाये से आग से दूर भाग रहे हैं, पक्षी आकाश में दूर ऊपर उड़ते जा रहे है। बस बदन पर जानवरों की खाले लपेटे नाटे से कुछ लोग ही है, जो जंगल के सिरे पर झुंड बनाकर खड़े है। वे भी डर के मारे आग से दूर भागना चाहते है। लेकिन वे जानते है. आग जल्दी ही बुझ जायेगी। और ऊंची-ऊंची लपटों की जगह यहां लाल-पीले शोले रह जायेंगे, जिनके पास इस ठंडी रात मे उन्हें गर्माहट मिलेगी। और राख को टटोलने पर उसके नीचे भुने हुए नरम-नरम कंदमूल मिलेंगे।

फिर किसी ने राख में से सुलगते कोयले उठाकर सूखी घास की ढेरी पर फेंक दिये। और पहला अलाव जल उठा। मनुष्य ने अग्नि को अपने वश मे कर लिया और वह पृथ्वी पर सबसे शक्तिशाली हो गया।

क्यों? क्योंकि उसके पास अब **ऊर्जा का नया स्रोत था**, जो भूख, अंधकार और हिंसक जंतुओं से जूझने में उसका बहुत बड़ा सहायक था।

कैसी है यह ऊर्जा ?

एक बात हम तुम्हें तुरन्त ही बताये देते हैं: ऊर्जा को किसी ने नही देखा है। इसका कोई रंग नही, कोई स्वाद नहीं, कोई गंध नही है। इसे हाथ से छुआ नही जा सकता, जैसे हम ईट को छू सकते है। ऊर्जा को "देख पाने" का एक ही तरीका है: इससे काम कराओ।

अब तो लोगो ने इस अदृश्य शक्ति के प्रायः सभी रहस्य जान लिये हैं।

पता चला कि "केवल ऊर्जा" तो होती नही। इसके तो पांच रूप हैं:
रासायनिक ऊर्जा, ताप ऊर्जा, यांत्रिक ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा और परमाणु या नाभिकीय ऊर्जा।

अभी हम ऊर्जा के इन रूपों के गुणों की विस्तार से चर्चा नही करेंगे। यह आगे की बात है और हर बात का अपना समय होता है। इसीलिए तो किताब लिखी गई है।

अभी तो हम बस इनके सबसे प्रमुख गुणो और क्षमताओ के बारे में ही बताना चाहते हैं।

पहला और सबसे बडा गुण हम जानते हैं – ऊर्जा के सभी रूप "काम कर सकते हैं"।

ऊर्जा का दूसरा गुण तो बिल्कुल चमत्कारिक है। पता चला कि ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में रूपांतरित हो सकती है। रासायनिक ऊर्जा ताप ऊर्जा बन सकती है, और ताप ऊर्जा यांत्रिक ऊर्जा।

और लोग बहुत समय से उसके इस गुण का उपयोग कर रहे हैं। उन्होंने बहुत सी ऐसी मशीनें सोची और बनाई है, जो ऊर्जा के रूप बदलती हैं।

प्राय ऐसा होता है कि आवश्यक रूपांतरण के लिए एक मशीन काफी नही होती। तब लोग मशीनों की एक शृखला बनाते है और मशीनें एक दूसरी को ऊर्जा देती जाती है, वैसे ही जैसे रिले-रेस मे एक खिलाडी दूसरे को डडी पकडाता है, दूसरा तीसरे को। अन्तर बस इतना है कि दौड मे डडी तो वही रहती है, खिलाडी बदलते जाते है। लेकिन हम जिस शृखला की चर्चा कर रहे है, उसमें "खिलाडी" यानी मशीनें भी बदलती है, और "डडी" यानी ऊर्जा भी। हर मशीन अपने से पहले की मशीन से ऊर्जा का एक रूप लेती है और अगली मशीन को दूसरा रूप देती है।

पृथ्वी पर ऐसी बहुत सी शृंखलाएं काम करती हैं: बिजलीघरों में, जहाज़ों पर, और भी बहुत सी जगहों पर।

ऊर्जा के प्रायः सभी रूपों को लोग **यांत्रिक ऊर्जा** मे बदलते है। इस ऊर्जा की मनुष्य को सबसे अधिक आवश्यकता है। यही ऊर्जा रेलगाड़ियों को पटरियों पर चलाती है, विमानों को आकाश में उठाती है, क़मीज़े "सीती" है, मोटरगाड़िया "बनाती" है। हमारे हृदय की यात्रिक ऊर्जा रक्तवाहिकाओं में रक्त का सचार करती है, और मांसपेशियों की ऊर्जा की बदौलत हम चल-फिर सकते हैं, पढ-लिख सकते है।

अच्छा, यह तो ठीक है। हमने खराद पर कोई पुर्ज़ा बना लिया, या मशीन पर कमीज़ सी ली। पर वह ऊर्जा कहा गई, जिसने इस काम में हमारी मदद की थी? उसका क्या हुआ? क्या वह पुर्ज़ा, या कमीज़ या कुछ और चीज़ बन गई? नही, ऐसा कुछ भी नही हुआ।

ऊर्जा के साथ कुछ भी क्यों न किया जाये, वह ऊर्जा ही रहती है। वह न नष्ट होती है, न बनती है। वह तो बस एक रूप से दूसरे रूप में बदलती है।

और जब ऊर्जा आदमी की मदद कर चुकी होती है – इस्पात गलाने का, माल ढोने का, या टेलीविजन पर कोई कार्यक्रम दिखाने का काम कर चुकी होती है, तो वह अनिवार्यत ऊष्मा यानी **ताप ऊर्जा** बन जाती है।

ज़रा देखो: इंजन हवा से बातें करता चला आ रहा है। उसके पीछे डिब्बों की लबी कतार है। सामने से आती हवा इंजन से टकराती है, हर पायदान मे फसती है। डिब्बों की छतों और दीवारों से रगडती है। ट्रेन को आगे बढने से रोकती है। डिब्बों तले पहिये ठक-ठक करते हैं, पटरियों पर चलते हैं, और वे भी पटरियों से रगड़ खाते है। यह रगड़ ही, जिसे घर्षण भी कहते हैं, इजन की प्रायः सारी शक्ति खा जाती है।

रगड़ से तो हर चीज़ गरम होती है। इस बात की जाच बड़ी आसानी से की जा सकती है। अपनी हथेलियां रगड़ कर देखो – तुरन्त ही पता चल जायेगा।

तो क्या इजन अपने काम से पटरियों और हवा को गरम करता है? हा। फिर यह ऊष्मा वायुमण्डल मे चली जाती है, और वहा से आगे अंतरिक्ष मे।

यही बात कार पर भी लागू होती है। कार के लंबे सफर के बाद पहिये को हाथ लगाकर देखो, पता है कितने गरम होते हैं!

इस सबका क्या मतलब निकलता है? यही कि पृथ्वी अतरिक्ष को "गरम" करती है? हां, बिल्कुल यही।

लेकिन अतरिक्ष पृथ्वी से ऊर्जा लेता ही नही है। वह हमें अपनी सौर ऊर्जा भेजता है। यह ऊर्जा पेड़-पौधो में जमा होती है और रासायनिक ऊर्जा में रूपांतरित हो जाती है। देर-सवेर सभी पौधे सूख जाते हैं और उनके अवशेष खनिज तेल, गैस, पत्थर का कोयला और दलदली कोयला बन जाते हैं।

आज ईंधन ही पृथ्वी पर ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है, या यह कहिये कि फ़िलहाल प्रमुख स्रोत है।

ईंधन जलाकर ही लोग ऊर्जा की अपनी प्राय. सारी जरूरतें पूरी करते हैं। बिजलीघरों के बायलरों में, मोटरगाड़ियों, जलपोतों, विमानों के इंजनो में, लोहा गलाने की भट्ठियों में, राकेटों में हर साल इतना ईंधन जलता है, कि उससे कृष्ण सागर का सारा पानी उबाला जा सकता है।

ऊष्मा कैसे हमारे काम आती है?

कहते है, बहुत साल पहले एक लडका अगीठी के पास बैठा था। आग पर पतीला चढा हुआ था। ढकने तले से भाप निकल रही थी। ढकना उछल रहा था, खनखना रहा था।

"यह ढकना उछल क्यो रहा है?" लड़के ने सोचा। एक कपड़ा लेकर उसने ढकना हाथ से कसकर दबाया। लेकिन वह उसे दबाये नही रख सका।
कोई अनबूझ शक्ति ढकने को नीचे से धकेल रही थी। इस लडके का नाम था जेम्स वाट।

लोग तो सदियों से पानी उबालते आये थे। पतीले में खाना पकाते आये थे। पानी जल्दी उबले इसके लिए वे पतीलों को ढकनों से बद करके रखते थे।

पतीले में जब पानी उबलता है, तो भाप बनती है। यदि पतीला ढकने से अच्छी तरह ढका हुआ है, तो उसमे भाप ज्यादा ही ज्यादा होती जाती है। वह चारों ओर जोर डालती है: पानी पर, पतीले की दीवारों पर और ढकने पर भी। वह बाहर निकलने का रास्ता ढूढती है। आखिर वह ढकने को उठा लेती है और आजादी पा लेती है। ढकना फिर से बद हो जाता है और भाप फिर से फंस जाती है। फिर वह जमा होती रहती है और ढकने को उठाने की कोशिश करती है। तुमने खुद कई बार रसोई मे यह सब देखा होगा। यही सब दो सौ साल पहले जेम्स भी देख रहा था।

कोई पत्थर, या पानी से भरी बाल्टी, या ढकना ही उठाने के लिए शक्ति चाहिए। तो इसका मतलब हुआ कि पतीले का ढकना उठाने वाली भाप में यह शक्ति है। यह बात तो वैज्ञानिक पहले से ही जानते थे। वाट के जन्म से सौ साल पहले ही अंग्रेज मिस्त्रियों न्यूकमन और थामस सावेरी ने ऐसी मशीनें बनाई थी, जो भाप की शक्ति को इस्तेमाल करती थी। ये मशीनें खानों में से पानी बाहर निकालती थी, कोयले से भरे ठेले खीचती थी, भार उठाती थी। लेकिन इनकी क्षमता बहुत थोड़ी थी, ये बहुत बड़ी, भारी-भरकम होती थी और बहुत "पेटू" भी। हर मशीन एक दिन में ढेर का ढेर कोयला "खा" जाती थी और टनों पानी "पीती" थी। और फायदा इनमे कोई खास था नही।

जेम्स जब सोलह साल का हुआ तो एक वर्कशाप मे काम करने लगा, ...ाँ, भाप की मशीनों और करघो की मरम्मत का काम होता था। वह हर फन मौला बन गया, और फिर उसने भाप से चलने वाली बहुत बढ़िया मशीन बनाई।

यह तीन ढकनो वाला "पतीला" – सिलडर – था। दो ढकने पूरी तरह बद होते थे। और तीसरा ढकना – पिस्टन, जो अदर था, चल सकता था। छेदों मे से भाप कभी पिस्टन-ढकने के ऊपर से और कभी नीचे से अदर जाती थी, और पिस्टन नीचे-ऊपर चलता था। इस पिस्टन को पम्प या करघे के साथ जोडा जाता था। पिस्टन चलता और उसके साथ ही पम्प भी काम करता, करघा भी चलता।

भाप बनाने के लिए एक खास टंकी – बायलर – में पानी उबाला जाता था। नलियो से होते हुए भाप बायलर से मशीन तक जाती थी।

वाट की मशीन दूसरी मशीनो से कई गुनी अच्छी थी। इसमे कोयला और पानी कम लगता था। यह दूसरी मशीनो से अधिक तेज़ी से काम करती थी और इससे लाभ भी अधिक होता था।

इस मशीन के साथ ही "भाप युग" आरम्भ हुआ। फैक्टरियो और कारखानो की चिमनिया धुआ छोडने लगी। नदियो और समुद्रो मे स्टीमर चलने लगे। इन्हे हवा के रुख का इतज़ार नही करना होता था। भाप की मशीन की बदौलत जहाज़ जहा चाहते जा सकते, और उन्हे पालो की भी ज़रूरत नही रही थी।

पटरियो पर इजन चलने लगे। ये इतना माल खीच सकते थे, जितना एक साथ सौ घोडे भी नही खीच सकते थे। भाप से चलनेवाली मोटरगाडी भी बनाई गई। लोगो के देखते-देखते दुनिया बदल रही थी।

लेकिन ऐसा एकाएक नही हो गया। बुद्धिमान लोग भी तुरन्त ही नही समझ पाये थे कि कितनी बडी शक्ति उनके हाथो मे आ गई है।

कहते है, एक बार फ़ास के सम्राट नेपोलियन के पास मामूली से कपडे पहने एक नौजवान आया। उसने एक विचित्र जलपोत का नक्शा सम्राट के सामने रखा। इस पोत पर न ऊचे-ऊचे मस्तूल थे, न पाल। बस पोत के बीचोबीच पतली सी ऊची चिमनी थी, उसमे से काला-स्याह धुआ निकल रहा था। पोत के अगल-बगल दो विशाल पहिये दिखाई दे रहे थे। उन दिनो के हिसाब से यह बडा ही कुरूप पोत था। अन्वेषक अभी अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि नेपोलियन ने उसे भगा दिया। बारह साल बाद नेपोलियन को काला पानी की सजा भुगतने के लिए सेंट हेलेन द्वीप पर ले जाया जा रहा था। सहसा उसे पास से एक और जहाज़ गुजरता दिखाई दिया ... तुम समझ गये यह कौन सा जहाज़ था? हा, वही था यह। ऊची चिमनी और विशाल पहियो वाला जलपोत। उस पर नेपोलियन के जानी दुश्मन – इगलैड – का झंडा फहरा रहा

ऊष्मा कैसे हमारे काम आती है?

कहते है, बहुत साल पहले एक लडका अंगीठी के पास बैठा था। आग पर पतीला चढा हुआ था। ढक्कने तले से भाप निकल रही थी। ढकना उछल रहा था, खनखना रहा था।

"यह ढकना उछल क्यों रहा है?" लडके ने सोचा। एक कपड़ा लेकर उसने ढकना हाथ से कसकर दबाया। लेकिन वह उसे दबाये नहीं रख सका।
कोई अनबूझ शक्ति ढकने को नीचे से धकेल रही थी। इस लडके का नाम था जेम्स वाट।

लोग तो सदियो से पानी उबालते आये थे। पतीले में खाना पकाते आये थे। पानी जल्दी उबले इसके लिए वे पतीलो को ढकनो से बंद करके रखते थे।

पतीले में जब पानी उबलता है, तो भाप बनती है। यदि पतीला ढकने से अच्छी तरह ढका हुआ है, तो उसमे भाप ज्यादा ही ज्यादा होती जाती है।
वह चारो ओर ज़ोर डालती है, पानी पर, पतीले की दीवारों पर और ढकने पर भी। वह बाहर निकलने का रास्ता ढूंढती है। आखिर वह ढकने को उठा लेती है और आज़ादी पा लेती है। ढकना फिर से बंद हो जाता है और भाप फिर से फंस जाती है।
फिर वह जमा होती रहती है और ढकने को उठाने की कोशिश करती है। तुमने खुद कई बार रसोई में यह सब देखा होगा। यही सब दो सौ साल पहले जेम्स भी देख रहा था।

कोई पत्थर, या पानी से भरी बाल्टी, या ढकना ही उठाने के लिए शक्ति चाहिए। तो इसका मतलब हुआ कि पतीले का ढकना उठाने वाली भाप में यह शक्ति है। यह बात तो वैज्ञानिक पहले से ही जानते थे। वाट के जन्म से सौ साल पहले ही अंग्रेज़ मिस्त्रियों न्यूकमन और थामस सावेरी ने ऐसी मशीनें बनाई थी, जो भाप की शक्ति को इस्तेमाल करती थी। ये मशीनें खानों में से पानी बाहर निकालती थी कोयले से भरे ठेले खींचती थी, भार उठाती थी। लेकिन इनकी क्षमता बहुत थोड़ी थी, ये बहुत बड़ी, भारी-भरकम होती थी और बहुत "पेटू" भी। हर मशीन एक दिन में ढेर का ढेर कोयला "खा" जाती थी और टनों पानी "पीती" थी। और फ़ायदा इनसे कोई खास था नहीं।

जेम्स जब सोलह साल का हुआ तो एक वर्कशाप में काम करने लगा, पम्पों, भाप की मशीनों और करघों की मरम्मत का काम होता था। वह हर फन मौला बन गया, और फिर उसने भाप से चलने वाली बहुत बढ़िया मशीन बनाई।

यह तीन ढक्नों वाला "पतीला" – सिलडर – था। दो ढक्ने
तरह बद होते थे। और तीसरा ढक्ना – पिस्टन, जो अंदर था, चल सकता था।
मे से भाप कभी पिस्टन-ढक्ने के ऊपर से और कभी नीचे से अदर जाती थी,
: पिस्टन नीचे-ऊपर चलता था। इस पिस्टन को पम्प या करघे के साथ जोडा
ा था। पिस्टन चलता और उसके साथ ही पम्प भी काम करता, करघा भी चलता।

भाप बनाने के लिए एक खास टंकी – बायलर – मे पानी उबाला जाता था। नलियो से
। हुए भाप बायलर से मशीन तक जाती थी।

वाट की मशीन दूसरी मशीनो से कई गुनी अच्छी थी। इसमे कोयला और पानी कम
ता था। यह दूसरी मशीनो से अधिक तेज़ी से काम करती थी और इससे लाभ भी अधिक
ा था।

इस मशीन के साथ ही "भाप युग" आरम्भ हुआ। फैक्टरियो और कारखानो की
मनिया धुआ छोडने लगी। नदियो और समुद्रो मे स्टीमर चलने लगे।
ई हवा के रुख का इतज़ार नही करना होता था। भाप की मशीन की बदौलत
ाज़ जहा चाहते जा सकते, और उन्हे पालो की भी जरूरत नही रही थी।

पटरियों पर इजन चलने लगे। ये इतना माल खीच सकते थे, जितना एक साथ सौ
ड़े भी नही खीच सकते थे। भाप से चलनेवाली मोटरगाडी भी बनाई गई।
ागो के देखते-देखते दुनिया बदल रही थी।

लेकिन ऐसा एकाएक नही हो गया। बुद्धिमान लोग भी तुरन्त ही नही समझ
ये थे कि कितनी बडी शक्ति उनके हाथो मे आ गई है।

कहते है, एक बार फ्रास के सम्राट नेपोलियन के पास मामूली से कपडे पहने एक
ाजवान आया। उसने एक विचित्र जलपोत का नक्शा सम्राट के सामने रखा। इस पोत पर न
चे-ऊचे मस्तूल थे, न पाल। बस पोत के बीचोबीच पतली सी ऊची
मनी थी, उसमे से काला-स्याह धुआ निकल रहा था।
ात के अग़ल-बगल दो विशाल पहिये दिखाई दे रहे थे। उन दिनों के हिसाब से यह बडा
ी कुरूप पोत था। अन्वेषक अभी अपनी बात पूरी भी न कर पाया
ा कि नेपोलियन ने उसे भगा दिया। बारह साल बाद नेपोलियन को काला पानी की
ज़ा भुगतने के लिए सेंट हेलेन द्वीप पर ले जाया जा रहा था।
हसा उसे पास मे एक और जहाज़ गुज़रता दिखाई दिया... तुम समझ
ये यह कौन सा जहाज़ था? हा, वही था यह। ऊंची चिमनी और विशाल
हियों वाला जलपोत। उस पर नेपोलियन के जानी दुश्मन – इंगलैंड – का झडा फहरा रहा

था। पता चला कि जब नेपोलियन ने फुल्टन को (स्टीमर बनाने वाले का यही नाम था)
भगा दिया, तो वह सीधा इंगलैंड गया। और वहां उसकी खोज की कद्र हुई।

रूस में भाप से चलने वाली पहली मशीनें येफ़ीम चेरेपानोव नाम के हुनरमंद कारीगर ने
अपने बेटे मिरोन के साथ मिलकर बनाईं। ये मशीनें खानों और
वर्कशापों में काम करती थीं। और १८३४ में उन्होंने उराल में रूस का पहला
भाप-इंजन चलाया।

सौ साल तक वाट की मशीन से अच्छी और कोई मशीन नहीं थी। पर एक दिन एक
नई घटना हुई।

इंगलैंड में समुद्री जहाजों की परेड आयोजित की गई। सभी जहाज
अपने-अपने स्थान पर खड़े हो गये। मल्लाह डेकों पर पंक्तिबद्ध खड़े थे। पर तभी जहाजों
के सामने एक छोटा सा पोत पता नहीं कहां से आ गया। उसे यहां
किसी ने नहीं बुलाया था। एडमिरल ने हुक्म दिया कि इस घुसपैठिये को पकड़कर बंदरगाह
में खड़ा कर दो। सबसे तेज़ जहाज पोत का पीछा करने लगा। पर वह कहां पकड़
में आने वाला था। छोटा सा पोत बड़ी आसानी से पीछा करनेवालों से दूर निकल गया।

इस पोत का कप्तान था इंजीनियर चार्ल्ज़ पर्सन्स। उसने अपने पोत पर
एक नया इंजन – भाप-टर्बाइन – लगाया था।

भाप की मशीन तो पम्प जैसी होती है – उसमें पिस्टन ऊपर-नीचे चलता है,
और टर्बाइन ऐसी भंभीरी जैसी होती है, जिस पर पंखुड़ियां लगी हों। वैसे लैटिन
भाषा में "टर्बो" का मतलब ही होता है भंभीरी। नली से आती
भाप की धार पंखुड़ियों पर पड़ती है और इससे टर्बाइन घूमती है।

पार्सन्स ने इस "भंभीरी" को लिटा दिया और टर्बाइन की धुरी पर पंखा – प्रोपेलर –
लगा दिया। टर्बाइन घूमती और उसके साथ ही प्रोपेलर भी, और पोत तेज़ी से आगे बढ़ता।

अब टर्बाइनें केवल समुद्री जहाजों में ही नहीं लगी होतीं। इनका प्रमुख काम अब ताप
बिजलीघरों में है, जहां ऊष्मा को विद्युत ऊर्जा में रूपांतरित किया जाता है।

आज से सौ साल पहले एक और इंजन बना। यह भी ईंधन
से ही ऊर्जा पाता था। लेकिन यह ईंधन बायलर की भट्ठी में नहीं बल्कि इंजन के भीतर ही
जलाया जाता था। इसलिए इसे आंतरिक दहन इंजन कहा गया।

यह भाप की मशीन जैसा ही है – इसमें भी वैसा ही सिलंडर और पिस्टन
होते हैं। लेकिन इसके लिए भाप नहीं चाहिए, बायलर और भाप की
नलियां नहीं चाहिए। इसके काम करने का तरीक़ा यह है।

सिलंडर में तरल ईंधन – तेल या पेट्रोल – छिड़का जाता है। वहा वह जल उठता है और इस तरह सिलंडर में गरम गैस बनती है। यह गैस पिस्टन पर जोर डालती है और उसे धकेलती है। पिस्टन धुरी को घुमाता है, जिस पर पहिया या प्रोपेलर लगा होता है।

इस इंजन की खोज जर्मन इजीनियर रुडोल्फ डीजल ने की थी। प्राय उन्ही दिनो पीटर्सबर्ग के एक कारखाने में रूसी इंजीनियरो और मजदूरो ने अपना इजन बनाया। यह आकार मे डीजल के इजन से छोटा था, उससे हल्का था, और सबसे बडी बात, सस्ते ईंधन – खनिज तेल – से चलता था।

अब तो तुम्हें अपने चारो ओर आतरिक दहन इंजन दिखाई देंगे। परिवहन का कोई भी साधन ले लो – समुद्रो में चलते जहाज, रेलों के डीजल इंजन, सड़कों पर चलती कारे, बसे, हवा मे उडते हेलिकाप्टर और छोटे विमान – सभी में यह सीधा-सादा इजन लगा होता है। खेतो में ट्रैक्टर और कम्बाइने भी इसी इजन से चलती है।

आज की मोटरकारो की "परनानी" तो दो सौ साल पहले फ्रास मे बनी थी। इस पर भाप की मशीन और बायलर लगा हुआ था। पेरिस मे इस विचित्र गाडी का बडी धूमधाम से परीक्षण हुआ। आगे-आगे पुलिसवाले तमाशबीनो की भीड छाटते चल रहे थे। उनके पीछे धुए और भाप के बादलो मे घिरी गाडी चल रही थी। उसके पीछे पानी के पीपो और कोयले से लदी घोडागाडिया थी। दस-दस मिनट बाद सब रुक जाते। भट्ठी मे कोयला झोंका जाता, बायलर मे पानी भरा जाता और फिर से "यात्रा" आरम्भ होती। पर यात्रा थोडी देर ही चली। गाडी चला रहा अन्वेषक हैंडल नही सभाले रह सका, गाड़ी एक मकान की दीवार से जा टकराई और फट गई। अब निकोला जोजेफ कुन्यो की बनाई गाडी की मरम्मत और सफाई करके उसे पेरिस के परिवहन सग्रहालय में रखा गया है।

सचमुच की पहली गाड़ी तो १८८६ मे चली थी। जर्मन मिस्त्री गोट्लिब डेम्लर ने उसे अपने हाथो बनाया था। यह गाडी उसने बग्घी पर पेट्रोल से चलने वाला इजन लगाकर तैयार की थी। इस इजन का डिजाइन उसने स्वय सोचा था।

रूसी नौसेना के कप्तान अलेक्सान्द्र मोझाइस्की ने जो पहला हवाई जहाज बनाया था, वह भी उडान के लिए बहुत भारी था। उस पर लगी भाप की मशीन का वजन इतना था कि हवाई जहाज कम दौड लगाकर कुछेक बार ऊपर को उछल ही पाया। मोझाइस्की स्वय भी समझता था कि भाप की
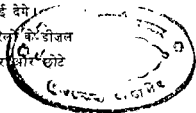
मशीन पर उड़ा नहीं जा सकता, कि विमान के लिए कोई दूसरा इंजन चाहिए, जो अधिक हल्का हो और साथ ही अधिक शक्तिशाली।

उनका यह अनुमान सही निकला। १९०२ में पेट्रोल इंजन वाला विमान उड़ा। अमरीका के ऑर्विल और विल्बर राइट नाम के दो भाइयों ने यह हवाई जहाज बनाया था। उड़ान भरने का उनका पहला प्रयास असफल रहा। पहली उड़ान विल्बर भर रहा था, उसने हवाई जहाज की "नाक" बड़ी तेजी से ऊपर को उठा दी, जिसके कारण रफ्तार कम हो गई और हवाई जहाज जमीन पर आ गिरा। सौभाग्यवश किसी को कुछ नहीं हुआ। दो हफ्ते बाद ऑर्विल हवाई जहाज के पंख पर लेटा – हां, यह हवाई जहाज ऐसे ही चलाया जाता था। उसने इंजन चालू किया, हवाई जहाज तेजी से दौड़ चला और फिर उड़ने लगा। इन्सान की यह पहली उड़ान केवल सत्रह सेकंड की थी।

तो ऐसा बढ़िया इंजन खोज निकाला था इंजीनियरों ने।

लेकिन अपने "नाना" – भाप के इंजन – से उसने विरासत में एक बहुत बड़ी कमी भी पाई थी। आंतरिक दहन इंजन के और भाप के इंजन के पिस्टन एक ही तरह काम करते हैं: ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे – और इस तरह चलते हुए ये इंजन का अस्थि-पंजर ढीला करते हैं। इंजन जितना अधिक शक्तिशाली होता है, उतना ही ढीला पड़ता है, यहां तक कि वह अपने पिस्टनों की "चोटों" से ही टुकड़े-टुकड़े हो सकता है।

यह तो तुम जानते ही हो कि टर्बाइनों में कोई हिलने वाले पिस्टन नहीं होते। सो उनके टुकड़े-टुकड़े होने का भी कोई खतरा नहीं है। इसलिए वे बहुत शक्तिशाली और मजबूत भी हो सकती है।

अभी हाल ही में लेनिनग्राद के धातु कारखाने में यह बात साबित कर दिखाई गई है। यहां एक असाधारण भाप टर्बाइन बनाई गई है। इस अकेली टर्बाइन की क्षमता १९१७ की क्रांति से पहले रूस में काम कर रही सभी टर्बाइनों की कुल क्षमता से अधिक है।

सो इंजीनियर सोचने लगे। आंतरिक दहन इंजन हल्का है और इसका डिज़ाइन सीधा-सादा है। लेकिन इसकी शक्ति बहुत अधिक नहीं हो सकती। दूसरी ओर
है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह बहुत बढ़िया इंजन है।
के लिए बायलर चाहिए। और आजकल जो भाप बायलर
ने साथ मंजिले मकान जितने बड़े होते हैं। बायलर

के अलावा टर्बाइन के लिए रेफ़िजरेटर, पाइप और पम्प भी चाहिए।

"क्या आंतरिक दहन इंजन के हल्केपन और सरलता को टर्बाइन की क्षमता और रफ़्तार से जोड़ा नही जा सकता?" इंजीनियरों ने सोचा। "क्यों न गरम गैस पिस्टन धकेलने के बजाय भंभीरी को घुमाये?" और ऐसा इजन वना लिया ग सोवियत संघ में इसका निर्माण १६३६ मे हुआ और इसका नाम गैस टर्बाइन रखा गया

गैस टर्बाइन भाप टर्बाइन जैसी होती है। अतर इतना है कि टर्बाइन भाप से वल्कि तपी हुई गैस की धार से चलती है।

यह बहुत हल्का, सशक्त और तेज इजन है। यह तो मानो वना ही हवाई जहाज़ो के लिए है। और अव गैस टर्बाइने प्राय सभी विमानो पर काम करती है।

यदि तुमने कभी सचमुच की बदूक चलाई है, तो तुम्हे याद होगा कैसे गोली छूटने के साथ कुंदे से कंधे पर झटका लगता है। यह झटका क्यो लगता है? यह समझने के लिए आओ यह देखे कि गोली छूटती कैसे है। हम लिबलिबी दबाते हैं, घोड़ा पिस्टन पर चोट करता है, चोट से चिंगारी निकलती है, यह चिंगारी कारतूस में भरा बारूद जलाती है। बारूद के जलने से बनी गैस बहुत ज़ोर से गोली या छर्रों पर और अन्य सभी दिशाओ मे भी दवाव डालती है। गैस के प्रहार से गोली बदूक की नली से छूटती है और बदूक चला के कंधे पर झटका लगता है। वह बल जो वदूक और शिकारी पर दवाव डालता है, प्रतिघाती बल कहलाता है।

और यदि कारतूस में से गोली निकाल कर "खाली" कारतूस दागा जाये, तो क्य झटका लगेगा? हा, लगेगा। और यदि "बंदूक" में बारूद या इधन आम बदूक की तर थोड़ा-थोड़ा करके नही, वल्कि निरतर पहुंचाया जाये, तो? या ऐसा किया जाये कि बारूद एकदम सारा न जले, वल्कि धीरे-धीरे जलता जाये? तब प्रतिघाती शक्ति भी "बदूक" पर निरतर दबाव डालेगी, उसे धकेलेगी। यही है जेट इंजन का सिद्धात।

कहते है कि वियतनाम में हर लडका ऐसा इंजन बनाना जानता है। वांस का टुकडा लेकर उसमें बारूद भर देते है और फिर बारूद में आग लगा देते है। जलते बारूद की गैस बाहर निकलती है और वास को आगे धकेलती है।

वेशक, सचमुच के जेट इंजन बांस से नही वल्कि सबसे मज़बूत इस्पात से बनाये जाते हैं। ये इंजन हवाई जहाजों लगाये जाते है।

हवाई जहाज़ों के इंजन तरल ईंधन – मिट्टी के तेल – से चलते हैं। राकेट के इंजन तरल और ठोस दोनों तरह के ईंधन से चल सकते है। हवाई जहाज के इंजन की बनावट राकेट इंजन से बहुत भिन्न होती है। और यह बात समझ में भी आती है, क्योंकि दोनो इंजन बिल्कुल भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में काम करते हैं।

हवाई जहाज तो जमीन के पास ही वायुमण्डल मे उड़ते हैं, दूसरे शब्दों में हवा मे उडते है, और यह हवा ईंधन के दहन के लिए जरूरी होती है। विमानों के "हवाई" इंजनों मे एक विशेष युक्ति होती है – हवाचूस। उडान के दौरान उसका खुला "मुंह" सामने से आती हवा को पकडता है। फिर वह बहुत संपीडित होकर दहन कक्ष में पहुंचती है। यही पर मिट्टी का तेल भी "छिडका" जाता है। उच्च तापमान के कारण ईंधन जल उठता है। तप्त गैस की धार तुंड मे से बाहर निकलती है और इंजन को तथा उसके साथ ही विमान को आगे धकेलती है।

राकेट पृथ्वी से दूर उडते हैं – वायुहीन अंतरिक्ष मे। इस बात की ओर ध्यान दो – वे **वायुहीन अंतरिक्ष** में उडते है। लेकिन ईंधन को तो जलना है। इसलिए राकेट हवा भी अपने साथ लेकर चलता है। वैसे सही-सही कहा जाये, तो हवा नहीं आक्सीजन लेकर चलता है।

यदि राकेट इंजन तरल ईंधन से चलता है, तो उसके लिए दो टंकियों की जरूरत होती है – एक मे ईंधन होता है और एक मे आक्सीजन। ईंधन और आक्सीजन दहन कक्ष मे पहुंचाये जाते है और आगे तो तुम सब जानते ही हो।

असल में राकेट पर कई सारी टंकियां होती हैं। जब एक जोड़ी मे ईंधन और आक्सीजन खत्म हो जाता है, तो उसे फेंक दिया जाता है और ईंधन व आक्सीजन अगली जोड़ी से लिया जाता है। जब वह भी खाली हो जाती है, तो तीसरी जोड़ी की बारी आती है।

कृत्रिम भू-उपग्रह और अंतरिक्षयान छोड़े जाने के समाचार तो तुमने सुने ही होंगे। "पहला चरण ठीक समय पर अलग हो गया ... दूसरा चरण अलग हो गया ... तीसरा चरण ..." ये चरण ईंधन और आक्सीजन की टंकियां ही है।

ठोस ईंधन में आक्सीजन पृथ्वी पर ही मिला दी जाती है। और वह टंकी में ही जलता है। जब एक टंकी "जल" जाती है, तो उसे राकेट से अलग करके फेंक देते है। अगली टंकी में ईंधन जलने लगता है ... ये भी राकेट के चरण है।

अभी तक हमने जिन इंजनो के बारे में बताया है, वे सब "निकट सम्बन्धी" है। इन सबको काम करने के लिए ईधन चाहिए। ईधन जलता है और ताप ऊर्जा प्रदान करता है। इसीलिए इन मशीनो को ताप मशीने कहते

अभी तो पृथ्वी पर बहुत ईधन है। लेकिन इसके भडार वर्ष प्रति वर्ष कम होते जा रहे है। वैज्ञानिकों का ख्याल है कि और सौ-डेढ सौ साल के लिए ईधन काफी होगा। वह भी तब जबकि हम उसका उपयोग किफायत से करेंगे। और इसका अर्थ यह है कि लोगों को ऊर्जा के पुराने स्रोतो का अधिक अच्छी तरह उपयोग करना चाहिए और नये स्रोत ढूंढने चाहिए।

कौन से नये स्रोत? इन्ही की अब हम चर्चा करेंगे।

किलोग्राम यूरेनियम का वज़न कितना है?
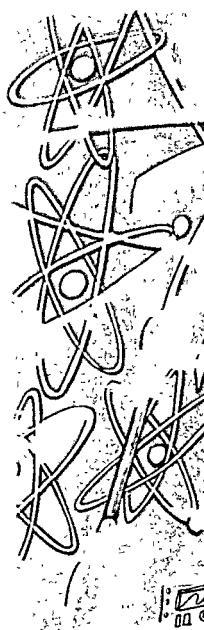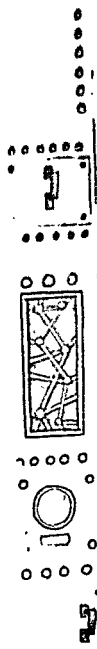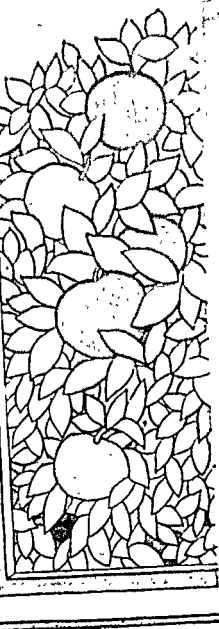
तुमने परमाणु बिजलीघरों और परमाणुचालित पोतों के बारे में सुना है? जरूर सुना होगा और पढ़ा होगा। परमाणु बिजलीघरों में बिजली बनती है और परमाणुचालित हिमभंजक पोत उत्तरध्रुवीय महासागर में बर्फ तोडकर माल से लदे जहाजों के लिए रास्ता बनाते है।

परमाणु ऊर्जा का उपयोग करना लोगों ने थोड़े समय पहले ही सीखा है। १९५४ में सोवियत संघ के ओब्निन्स्क नगर में संसार का पहला परमाणु बिजलीघर चालू हुआ। और पहले परमाणुचालित जहाज तो इससे भी बाद में बने।

लेकिन परमाणु शब्द लोग बहुत पहले से जानते है।

आज से तेईस सौ साल पहले प्राचीन यूनान में डेमोक्रीटस नाम का एक विद्वान रहता था। उसने मनुष्य के चारो ओर व्याप्त प्रकृति के बारे में बहुत चिंतन-मनन किया। उसने इस बात पर विचार किया कि सभी पदार्थ और वस्तुएं, जल और पत्थर, पेड, फूल और पशु किस चीज़ से "बने" हुए हैं। उसके पास ऐसे कोई जटिल उपकरण नही थे, जैसे आजकल के वैज्ञानिकों के पास है। लेकिन डेमोक्रीटस ने अपने चिंतन के बल पर ही अद्वितीय अनुमान लगाया। उसने यह कल्पना की कि प्रकृति में सब कुछ किन्ही कणो से बना हुआ, जैसे कि मकान ईंटो से बना होता है। प्रकृति की ये "ईंटें" अदृश्य है और प्रकृति में इनसे छोटा और कुछ है ही नही। इन कणों को आगे विभाजित करना असम्भव ही है। इन कणों का नाम डेमोक्रीटस ने एटम (परमाणु) रखा, जिसका अर्थ ही है "अविभाज्य"।

सदियों बाद ही यह पता चला कि प्राचीन विद्वान का कथन अंशत: सही है।

सौ साल पहले की बात है। एक दिन फ्रांसीसी भौतिकविज्ञानी आंरी बेक्केरेल घर लौटने से पहले अपनी प्रयोगशाला साफ़ कर रहा था। उसने टेस्ट-ट्यूबें और फ्लास्क अल्मारी में रखे, मोटे काले कागज में लिपटी फोटो-प्लेटें भी अल्मारी के एक खाने में रखी। साफ-सुथरी मेजों पर एक बार फिर नजर डाली। वहां उसे उस पदार्थ के कुछ टुकड़े नजर आये, जिनके गुणों का वह अध्ययन कर रहा था। इस पदार्थ का नाम था यूरेनियम। बेक्केरेल जल्दी में था। टुकड़े बटोर कर उसने अल्मारी के खाने में रख दिये। उनमें से एक टुकडा फोटो-प्लेट के लिफाफे पर गिर पडा। गैस-बत्ती बुझाकर बेक्केरेल ने दरवाज़ा बंद किया और घर चला गया।

अगले दिन बेक्केरेल ने लिफाफे पर पड़ा टुकड़ा झाड दिया, फोटो-प्लेट पर आवश्यक चित्र खींचा और फिर प्लेट धोई। लेकिन प्लेट पर फोटो नहीं आया। उसे

न ही रोशनी लग चुकी थी। जहां उस पर यूरेनियम का टुकडा पडा
T था, वहां काला धब्बा दिखाई दे रहा था। वैज्ञानिक को इस पर बडा आश्चर्य हुआ
उसने जानबूझकर यह प्रयोग दोहराया और फिर से प्लेट पर यूरेनियम की
व अंकित हो गई।

अब क्यूरी दम्पति इस रहस्य को समझने के लिए काम करने लगे। उन्होंने
भिन्न पदार्थों का परीक्षण किया। पता चला कि रेडियम और
ोनियम मे भी ठीक ऐसे ही गुण है। लेकिन इसका कारण क्या है? इसकी केवल एक
व्याख्या हो सकती थी – "अविभाज्य" परमाणुओ की गहराइयो मे से किन्ही
ो की धाराएं आती है। ये कण ही फोटो-प्लेटो पर अपनी "छवि" छोडते है। और इसका
र्द यह था कि परमाणु सबसे छोटा कण नही है, उससे भी छोटे कण है।

अब हम प्राय. सही-सही जानते है कि परमाणु कैसे बना होता है। शहद की भारी
की कल्पना करो, जिसके चारों ओर मक्खियां मडरा
ी हैं। मक्खियां बूंद के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटती रहती है, उससे अलग नही हो
ी। यदि हम किसी भी पदार्थ का परमाणु देख पाते, तो हमें लगभग
ा ही दृश्य दिखाई देता। केन्द्र मे भारी "बूंद" यानी
भिक है और इसके इर्द-गिर्द सचल "मक्खियां" – इलेक्ट्रोन। वे मानो "गूटे" से बधे
ई है, और नाभिक के इर्द-गिर्द ही घूमते रहते है। हा, वे मक्खियो की तरह
रतीब ढग से नही उड़ते है, बल्कि हर इलेक्ट्रोन अपने परिक्रमा-पथ
र चक्कर काटता है।

यही सब कुछ नही। पता चला है कि नाभिक भी कसकर एक दूसरे से जुटे कणो से
ा होता है। इन कणो को प्रोटोन और न्यूट्रोन कहते है। नाभिक उस स्प्रिंग जैसा
ता है, जिसे रस्सी से कसकर बाध दिया गया हो और स्प्रिंग की ही तरह
समे प्रचड शक्ति है। स्प्रिंग सीधा हो जाये और अपनी गुप्त ऊर्जा प्रदान
, इसके लिए रस्सी को काटना चाहिए। इसी तरह नाभिक की ऊर्जा पाने के
ए उन अदृश्य बधनों को तोडना चाहिए, जो कणो को एक दूसरे से जोडे रखते है। ऐसा
ने पर कण अलग-अलग दिशाओ मे उड जायेंगे और उनकी
र्जा उनके चारो ओर के परिवेश को मिलेगी।

"भारी" तत्वो – यूरेनियम और प्लूटोनियम के नाभिक ही सबसे अधिक आसानी
टूटते है। विज्ञान की भाषा मे इस टूटने को विखडन कहते है।

हा, इन तत्वो को भारी इसलिए कहा जाता है कि इनके नाभिको मे बहुत से
ण होते है। विखडन के लिए इतना ही काफी है कि नाभिक के "निशाने" पर कोई "गोली"
र्पित कण आ लगे। पता चला है कि सबसे अच्छी "गोलिया" न्यूट्रोन ही है। वे ही
ट्रोन, जिनसे नाभिक बनता है।

न्यूट्रोनो का "स्थायी आवास" नाभिक है। लेकिन "स्वच्छन्द" न्यूट्रोनो के बीच
ऐ "घुमक्कड" भी होते है। ये नाभिक मे निकलकर यूरेनियम के

ले ही रोशनी लग चुकी थी। जहा उस पर यूरेनियम का टुकडा पडा
ा था, वहा काला धब्बा दिखाई दे रहा था। वैज्ञानिक को इस पर बडा आश्चर्य हुआ,
ब उसने जानबूझकर यह प्रयोग दोहराया और फिर से प्लेट पर यूरेनियम की
वि अंकित हो गई।

अब क्यूरी दम्पति इस रहस्य को समझने के लिए काम करने लगे। उन्होने
भिन्न पदार्थो का परीक्षण किया। पता चला कि रेडियम और
लोनियम में भी ठीक ऐसे ही गुण है। लेकिन इसका कारण क्या है? इसकी केवल एक
व्याख्या हो सकती थी – "अविभाज्य" परमाणुओ की गहराइयो मे से किन्ही
ो की धाराएं आती है। ये कण ही फोटो-प्लेटो पर अपनी "छवि" छोडते है। और इसका
र्थ यह था कि परमाणु सबसे छोटा कण नही है, उससे भी छोटे कण है।

अब हम प्रायः सही-सही जानते है कि परमाणु कैसे बना होता है। शहद की भारी
द की कल्पना करो, जिसके चारो ओर मक्खिया मडरा
ती है। मक्खियां बूंद के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटती रहती है, उससे अलग नही हो
ती। यदि हम किसी भी पदार्थ का परमाणु देख पाते, तो हमे लगभग
ा ही दृश्य दिखाई देता। केन्द्र मे भारी "बूद" यानी
भिक है और इसके इर्द-गिर्द सचल "मक्खिया" – इलेक्ट्रोन। वे मानो "खूटे" से बधे
है, और नाभिक के इर्द-गिर्द ही घूमते रहते है। हा, वे मक्खियो की तरह
रतीब ढग से नही उड़ते है, बल्कि हर इलेक्ट्रोन अपने परिक्रमा-पथ
चक्कर काटता है।

यही सब कुछ नही। पता चला है कि नाभिक भी कसकर एक दूसरे से जुड़े कणो से
ा होता है। इन कणों को प्रोटोन और न्यूट्रोन कहते है। नाभिक उस स्प्रिंग जैसा
ा है, जिसे रस्सी से कसकर बाध दिया गया हो और स्प्रिंग की ही तरह
समे प्रचंड शक्ति है। स्प्रिंग सीधा हो जाये और अपनी गुप्त ऊर्जा प्रदान
, इसके लिए रस्सी को काटना चाहिए। इसी तरह नाभिक की ऊर्जा पाने के
ए उन अदृश्य बंधनों को तोडना चाहिए, जो कणो को एक दूसरे से जोडे रखते है। ऐसा
ने पर कण अलग-अलग दिशाओ मे उड जायेगे और उनकी
र्जा उनके चारो ओर के परिवेश को मिलेगी।

"भारी" तत्वो – यूरेनियम और प्लूटोनियम के नाभिक ही सबसे अधिक आसानी
टूटते है। विज्ञान की भाषा मे इस टूटने को विखंडन कहते है।

हा, इन तत्वो को भारी इसलिए कहा जाता है कि इनके नाभिको मे बहुत से
ा होते है। विखंडन के लिए इतना ही काफी है कि नाभिक के "निशाने" पर कोई "गोली"
ानि कण आ लगे। पता चला है कि सबसे अच्छी "गोलिया" न्यूट्रोन ही है। वे ही
ट्रोन, जिनसे नाभिक बनता है।

न्यूट्रोनो का "स्थायी आवास" नाभिक है। लेकिन "घरघुस्सू" न्यूट्रोनो के बीच
"घुमक्कड़" भी होते है। वे नाभिक से निकलकर यूरेनियम के

टुकड़े में घूमते रहते हैं। देर-सवेर ऐसा "घुमक्कड़" किसी दूसरे नाभिक से टकरा ही जाता है। इस टक्कर से नाभिक का विखंडन हो जाता है और वहां से अब दो न्यूट्रोन निकलते हैं। ये दोनों भी अनिवार्यतः दो और नाभिकों को तोड़ देते हैं। अब यूरेनियम के टुकड़े में चार "गोलियां" हो गईं। और बस सिलसिला शुरू हो गया ... एक के बाद एक नाभिक टूटते जाते हैं और अपनी गुप्त ऊर्जा छोड़ते जाते हैं। जितनी अधिक ऊर्जा होगी उतनी ही अधिक ऊष्मा। एक किलोग्राम यूरेनियम से उतनी ही ऊष्मा पाई जा सकती है, जितनी दो हज़ार टन कोयले को जलाने से।

ज़रा सोचो तो कितनी बढ़िया बात है यह! यूरेनियम से भरे एक-दो सीसे के कंटेनर ले आये और बस विशाल बिजलीघर के लिए साल भर के ईंधन का प्रबंध हो गया। इसीलिए परमाणु बिजलीघर ऐसे स्थानों पर बनाते हैं, जहां आस-पास कोयला, तेल या गैस न हो।

ऐसे स्टेशन में परमाणु, या सही-सही कहा जाये तो नाभिकीय रिएक्टर ही सबसे प्रमुख है। यह तले और ढकने वाला धातु का विशाल सिलंडर होता है – भीमकाय पतीले या बायलर जैसा ही। इस सिलंडर के अंदर यूरेनियम की सलाखें और पानी के पाइप होते हैं। बाहर, रिएक्टर के ढकने पर – तरह तरह के उपकरण लगे होते हैं। यूरेनियम की सलाखों में नाभिकों का विखंडन होता है, नाभिकीय ईंधन "जलता" है और पानी को खूब गरम करता है।

पम्प इस गरम पानी को भाप-जेनरेटर में पहुंचाते हैं। भाप-जेनरेटर का अर्थ है भाप बनानेवाली मशीन।

भाप-जेनरेटर की संरचना सरल ही होती है पाइप के अंदर पाइप। अंदर के पाइप में रिएक्टर का गरम पानी बहता है। बाहर के पाइप में उससे विपरीत दिशा में फ्रिज में से आता ठंडा पानी। रिएक्टर के पानी से ऊष्मा ठंडे पानी को मिलती है। वह गरम होकर खौलने लगता है और भाप बन जाता है। यह भाप टर्बाइन की पंखुड़ियों पर पड़ती है और टर्बाइन घूमने लगती है।

अपनी ऊष्मा देकर रिएक्टर का पानी रिएक्टर में लौट आता है, फिर से गरम होता है और भाप-जेनरेटर में जाता है। इस तरह पानी जिस चक्र में घूमता रहता है उसे पहला परिपथ कहते हैं।

टर्बाइन को घुमाने के बाद भाप फ्रिज में जाती है। वहां वह ठंडी होकर पानी में बदलती है। पानी फिर से भाप-जेनरेटर में जाता है और फिर से भाप बनता है पानी और भाप का यह दूसरा चक्र दूसरा परिपथ कहलाता है।

रिएक्टर, भाप-जेनरेटर और फ्रिज के साथ टर्बाइन परमाणु विद्युत संयंत्र कहलाता है। इस संयंत्र को स्वचालित मशीनें और उनका आपरेटर व्यक्ति चलाता है।

ऐसे संयंत्र परमाणु बिजलीघरों और हिमभंजक जहाजो पर भी लगे होते हैं। बिजलीघरो मे टर्बाइनें परमाणु ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में रूपातरित करती है, तथा हिमभंजक पोतों की टर्बाइने गति में। शक्तिशाली परमाणु विद्युत संयंत्रों की सहायता से हिमभंजक पोत समुद्र मे जमी मोटी से मोटी बर्फ काट कर जहाज़ों के क़ाफिले के लिए रास्ता बनाता जाता है। अगस्त, १९७७ मे सोवियत हिमभजक पोत 'आर्कतिका' चारों ओर फैली अखंड बर्फ को तोड़कर उत्तरी ध्रुव तक पहुंचा। इससे पहले एक भी हिमभजक पोत ऐसा नही कर पाया था।

यह सब पढकर यदि तुम हमसे दो प्रश्न पूछो तो हमें ज़रा भी आश्चर्य नही होगा।

पहला प्रश्न। दूसरे परिपथ का पानी ही क्यों उबलकर भाप बनता है? पहले परिपथ में भाप क्यो नही बनती?

दूसरा प्रश्न। दो परिपथों की ज़रूरत ही क्या है? सीधे रिएक्टर मे ही भाप क्यो नही बना ली जाती? आखिर वहां इसके लिए काफी गर्मी होती है।

पहले प्रश्न का उत्तर देना मुश्किल नही है। पहले परिपथ में पानी इसलिए नही उबलता क्योंकि वह बहुत "दबाया गया" होता है, संपीडित होता है, और दाब जितना अधिक होता है, पानी को उबालने के लिए उतने ही अधिक तापमान की आवश्यकता होती है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए हम दूर से बात शुरू करेंगे।

यूरेनियम यद्यपि बिल्कुल हौले-हौले "जलता" है, तो भी वह लोगों के लिए बहुत खतरनाक होता है। नाभिकों के विखंडन के समय बहुत से "टुकड़े" और कण बनते हैं जो बड़ी तेज़ रफ़्तार से चारों दिशाओं में उड़ते है।

कणों के इस प्रवाह को विकिरण कहते है। विकिरण सभी जीवों के लिए हानिकारक होता है। इसीलिए रिएक्टर के चारों ओर कंकरीट की मोटी-मोटी दीवारें बनाई जाती है। इन्हें जीव-सुरक्षा कहते हैं।

परमाणु विद्युत सयंत्र में दो जल परिपथ भी विकिरण से बचने के लिए ही बनाये गये है। पहले परिपथ का पानी विकिरण से दूषित होता है, और यूरेनियम की ही भांति इसमें से कण निकलते है। यदि इस "दूषित" यानी रेडियोधर्मी पानी को भाप में बदल लिया जाये, तो पाइप, पम्प और टर्बाइन – ये सब भी रेडियोधर्मी हो जायेंगे।

इसीलिए यह निश्चय किया गया कि रिएक्टर का रेडियोधर्मी पानी "दूसरे" पानी को गरम करे। पाइपों की दीवारें हानिकारक कणों के प्रवाह को बहुत कम कर देती है और दूसरे परिपथ का जल शुद्ध या लगभग शुद्ध रहता है। टर्बाइन और जिन के इर्द-गिर्द जीव-सुरक्षा बनाने की आवश्यकता नही रहती। लोग निश्चिन्त होकर उन का काम कर सकते है।

सबसे पहले पियेर क्यूरी ने ही विकिरण का प्रभाव अपने व्यक्ति ने कुछ घंटे तक रेडियम के टुकड़े के ऊपर हाथ रखे रखा कुछ घंटे बाद हाथ की त्वचा जल गई और वहा घाव हो गया। ठीक हो गया। और लोग समझ गये कि रेडियम और यूरेनियम के सावधानी बरतनी चाहिए।

अब तो इंजीनियर सुरक्षा का अच्छा प्रबंध करना सीख गये है परमाणु बिजलीघर बिल्कुल खतरनाक नही रहे। इन्हें नगरों में ही बनाया जा सकता है। ये ताप बिजलीघरो से कही अधिक "साफ़" धूल, राख और धुए से दूषित नही करते।

अब तो परमाणु बिजलीघरो के पास गरम पौधाघर भी बनाये सब्जिया और फूल उगाये जाते है। लेनिनग्राद मे फिनलैंड की खाड़ी के बिजलीघर तो मछेरों की मदद करता है। टर्बाइनों को ठंडा करने वाला गुनगुना पानी खाड़ी में बहता है। इस पानी मे शैवाल खूब उ मछलियो का आहार है। और जहा आहार होगा, वहा मछलिया भी होंग

परमाणु ऊर्जा एक और जरूरी काम मे भी लोगों की मदद करती है। आजकल पृथ्वी पर मीठे जल की अधिकाधिक कमी होती जा रह जल की, जो हम पीते है, जिससे नहाते-धोते हैं। और इसका कारण यह न ज्यादा पानी पीने लगे है, या ज्यादा नहाने-धोने लगे हैं। हमारे उद्योगों में अधिकाधिक जल लग रहा है। लोहा गलाना हो, या तेल करनी हो, या बिजली बनानी हो – हर काम के लिए पानी चाहिए। खेती के लिए भी बहुत पानी चाहिए। सोवियत संघ में ऐसे बहुत से जहां धूप खूब होती है, जमीन उपजाऊ है, पर पानी नहीं है। इसलिए लोग वहां नहरें खोदते हैं और नदियों, झीलों का पानी प्यासे खेतों तक पहुंचाते

लेकिन पृथ्वी पर जल का प्रमुख भंडार है सागर और महासागर। उन तो, तुम जानते हो, पानी खारा होता है। इस पानी को काम मे लाया जा सके, लिए लोग समुद्री जल को मीठा बनाते हैं, उसका विलवणीकरण करते है। खारे पानी में से लवण निकालकर उसे मीठा बनाने का तरीका बिल्कुल आसान है: खारे पानी को उबाला जाता है, उससे भाप निकाली ज भाप को कंडेंसेटर में जमा करते हैं और ठंडा करते है। बस मीठा पानी बन जाता है इसमें "स्वाद के लिए" थोड़ा सा लवण मिलाते हैं और लो जो चाहो करो – पानी पियो, नहाओ-धोओ, खेतों-बगीचों की सिंचाई करो। बायलर में जो तलछट जम जाती है, उसे साफ़ करके फिर से उसमें खारा पानी भर देते हैं। वैसे यह तलछट भी बड़े काम की चीज होती है। इसमें मैंगनीज, सोडियम, पोटाशियम जैसे मूल्यवान तत्व होते है। यहां तक कि थोड़ा सा सोना भी होता है।

जल के विलवणीकरण के लिए बहुत ऊर्जा चाहिए। यह ऊर्जा ही परमाणु सयंत्रों मे मिल सकती है।

सोवियत सघ में कास्पियन सागर के पूर्वी तट पर निर्जल और तपते रेगिस्तान के बीच शेव्चेन्को नाम का एक नगर है। तुम सोचते होगे यह धूल भरा नगर होगा, कही कोई पेड़-पौधा, कोई हरियाली नही। तुम्हारा यह सोचना गलत है। इस नगर में पानी की कोई कमी नही है। नगर मे हरियाली ही हरियाली है, अनगिनत फ़व्वारे है। और यह सब इन्सान के हाथों का कमाल है। शेव्चेन्को में परमाणु बिजलीघर बनाया गया है। इसकी प्राय. सारी ऊर्जा विलवणीकरण प्लांट में जाती है। इससे नगर को पेय जल मिलता है और उद्योगों को कच्चा माल – सोडियम, पोटाशियम, मैंगनीज के लवण तथा अन्य अनेक पदार्थ।

अभी तो परमाणु बिजलीघरों से ताप बिजलीघरो की तुलना मे कही कम ऊर्जा पाई जाती है। लेकिन यही कोई बीस-तीस साल बाद परमाणु बिजलीघरो मे ही सबसे अधिक बिजली बनने लगेगी। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि ताप बिजलीघरो मे जलाया जानेवाला ईंधन – कोयला, तेल, गैस – कम होता जा रहा है। दूसरा यह कि इस ईंधन को जलाना अक़्लमदी नही है। तेल, गैस और कोयले से बहुत सी काम की चीज़े बनाई जा सकती है, जैसे कि कृत्रिम रेशा और इस रेशे से बनता है कपड़ा; ऐसी कृत्रिम सामग्रियां, जो इस्पात से भी अधिक मजबूत होती है; काच, मशीनों के लिए पुर्जे तथा बहुत सारी दूसरी चीज़े।

सो वैज्ञानिकों का कहना है कि सन् २००० तक संसार में आधी से अधिक बिजली परमाणु बिजलीघरों से मिलेगी। और इस बिजली की लागत आजकल ताप बिजलीघरों मे प्राप्त ऊर्जा की लागत का दसवा हिस्सा ही होगी।

सोवियत सघ में परमाणु ऊर्जा उद्योग का विकास बड़ी तेज़ी से हो रहा है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना अवधि मे १० तक परमाणु बिजलीघर बनाये जाते हैं।

क्या पानी जल सकता

बच्चो की एक कहानी है कि कैसे दो लोमड़ियो ने "उठाई
मे आग लगाई"। तुम कहोगे "यह सब बकवास है। पानी तो कभी
नही चाहे समुद्र का हो, या नदी का, या झील का।
पानी मे तो उलटे आग बुझाते ही है।" तुम्हारा यह कहना सही है,
से नही।

यह बात तो ठीक है कि पानी नही जलता। लेकिन बडी
दिलचस्प बात यह है कि पानी उन दो तत्वो से बना है, जिनमे से एक त
तरह जलता है, और दूसरा इस दहन को खूब अच्छी तरह बनाये रखता है
हाइड्रोजन और आक्सीजन। यही सारी बात नही है। "सामान्य" हाइड्रोजन
कभी-कभी ऐसे कण भी मिलते हैं, जो सामान्य कणो से दुगने भारी
होते है। ऐसी हाइड्रोजन को भारी हाइड्रोजन या ड्यूटीरियम कहते हैं। बस
र्जा की प्रचुरता का लोगो का स्वप्न जुड़ा हुआ है।

बहुत पहले से लोग यह जानते है कि यदि भारी हाइड्रोजन के दो परमाणु
ना दिया जाये, तो एक नये तत्व – हीलियम – का नाभिक बन
गा और बहुत सी ऊर्जा निकलेगी। एक किलोग्राम ड्यूटीरियम से उतनी ही
मिल सकती है, जितनी १. ४ करोड़ किलोग्राम कोयले से – यानी इतना
ा जलाने पर।

और तुम्हें पता है विश्व महासागर में कितना ड्यूटीरियम है?
कि मानवजाति के लिए यह ५० अरब साल के लिए काफी होगा।
लेकिन दो नाभिकों को मिलाना बहुत मुश्किल है।
ाए ड्यूटीरियम को सूर्य के तापमान – २० करोड अंश सेंटीग्रेड – तक गरम करना
इतने तापमान पर ही ड्यूटीरियम के नाभिकों का संलयन होगा
ा निहित ऊर्जा निकलेगी।
ान ऐसे नारकीय ताप में तो प्रकृति में जो कुछ है वह वाष्पित हो जाता है, और

मे – प्लाज्मा मे – बदल जाता है। अगर सब कुछ वाष्पित होता है,
तो वह संयत्र भी, जिसमें ड्यूटेरियम को गरम किया जायेगा,
वाष्पित हो जायेगा न ? जरूर। तो इसका मतलब हुआ कोई बात नहीं बनेगी ? नहीं,
सौभाग्यवश ऐसा नहीं है।

बात यह है कि प्लाज्मा इलेक्ट्रोनों, न्यूट्रोनों, नाभिकों के टुकड़ों और साबुत नाभिकों की खिचड़ी है। इन सब कणों और अंशों का विद्युत आवेश होता है। बस वैज्ञानिकों ने इसी का लाभ उठाने की सोची है। उन्होंने
प्लाज्मा को चुम्बकीय क्षेत्र में "पैक" करने का निश्चय किया है।

चुम्बकीय क्षेत्र क्या है, यह बताना आसान नहीं, पर खैर, हम कोशिश करते है।

तुमने कभी न कभी तो चुम्बक हाथ में लिया ही होगा। धातु का यह टुकड़ा लोहे की छोटी-मोटी चीजों – कीलों, पिनों, वस्तुओं को अपनी ओर खींचता है और खुद भी लोहे से अच्छी तरह चिपक जाता है।

बहुत सी किताबों में, जो तुमने पढ़ी होंगी, या शीघ्र ही पढ़ोगे, चुम्बक और लोहे के चूरे के प्रयोगों का वर्णन किया गया है। गत्ते के टुकड़े पर लोहे का चूरा डालो और गत्ते के नीचे चुम्बक लाकर कुछेक बार गत्ते पर उंगली से ठक-ठक करो। चूरे की ढेरी मानो जादुई छड़ी के इशारे पर बिखर जायेगी। उसके स्थान पर चूरे के सुदर और सुस्पष्ट घेरे बन जायेंगे। इसमें कोई जादू-वादू नहीं है। बस चूरे पर चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव पड़ा है और वह बल-रेखाओं में फैल गया है।

चुम्बक के इर्द-गिर्द बल-रेखाएं सदा होती है – चूरा चाहे हो या न हो। चूरा तो बस इन अदृश्य रेखाओं को प्रकट करता है, जैसे डिवेलपर फोटो कागज पर बनी तस्वीर को प्रकट करता है। बल-रेखाओं की यह जाली ही आवेशयुक्त कणों को निश्चित पथ पर चलाती है, उन्हें किसी भी दिशा में उड़ने नहीं देती। चुम्बकीय मुट्ठी इधर-उधर उड़ते प्लाज्मा की पतली रस्सी बट देती है। इस रस्सी और संयत्र की दीवारों के बीच निर्वात बन जाता है और वे सही सलामत रहती है।

चुम्बकीय क्षेत्र एक और लाभदायक काम करती है। नाभिकों का संलयन होने लगे, इसके लिए उनकी संख्या बहुत अधिक होनी चाहिए। सब उन्हें

एक दूसरे को ढूंढ़ने में आसानी रहती है। चुम्बकीय क्षेत्र नाभिकों को एक "झुंड" में जमा करता है, देर-सवेर वे टकराते हैं, उनका संलयन होता है और ऊर्जा निकलती है। परन्तु ..

परन्तु अभी तो यह आशा मात्र ही है। पृथ्वी पर अभी तक कोई भी ड्यूटीरियम आवश्यक तापमान तक गरम करके उससे उपयोगी ऊर्जा नहीं पा सका है। हां, सोवियत वैज्ञानिकों ने 'तोकामाक' नाम के संयत्र सोचे और बनाये हैं। नवीनतम 'तोकामाक' में २ करोड़ अंश सेंटीग्रेड का तापमान पा लिया गया है। यह आवश्यक तापमान का दसवां अंश ही है। फिलहाल तो 'तोकामाक' इतनी ऊर्जा पाते नही, जितनी व्यय करते है। लेकिन खोज और अनुसधान तो जारी रहने ही चाहिए।

प्लाज़्मा को वश में करना अत्यंत कठिन है। वह यही ढूढता है कि चुम्बकीय जाल मे कोई बिल्कुल छोटा सा ही छेद मिल जाये। और छेद मिला नही कि बाहर निकल गया। ड्यूटीरियम के नाभिक, जिनकी खातिर चुम्बकीय जाल बनाया जाता है, चारों दिशाओं मे उड़ जाते है और सब कुछ नये सिरे से शुरू करना पड़ता है।

इसलिए वैज्ञानिक नाभिक से ऊर्जा पाने के दूसरे रास्ते भी खोज रहे हैं। सोवियत भौतिकविज्ञानी, अकादमीशियन बासोव ने यह रास्ता सुझाया है। ड्यूटीरियम के परमाणुओं से संतृप्त भारी जल की छोटी सी बूंद को जमाया जाता है। सूई की नोक जितना बर्फ़ का टुकड़ा बनता है। इस गोले पर लेसर किरण डाली जाती है। लेसर – गैस भरी ट्यूब या क्रिस्टल होता है, जो उच्च ऊर्जा की प्रकाश किरण "दागता" है। इस किरण के "प्रहार" से गोला उच्च तापमान तक गरम हो जाता है। ड्यूटीरियम के नाभिकों का संलयन होने लगता है और ऊर्जा निकलने लगती है। एक छोटा सा विस्फोट होता है। फिर किरण अगले निशाने पर जाती है, फिर उससे अगले पर ... एक के बाद एक विस्फोट होते हैं। हर अलग-अलग विस्फोट मे तो थोड़ी ही ऊर्जा मिलती है, लेकिन सबको मिलाकर ... वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा पाने के लिए प्रति सेकंड नाभिकीय ...न वाले कम से कम बीस गोलों का विस्फोट होना चाहिए।

इन गोलों से निकली ऊष्मा द्रव लीथियम को गरम करेगी। लीथियम एक धातु है। लीथियम से पानी गरम होगा – भारी नही, साधारण पानी। पानी भाप में बदलेगा और भाप टर्बाइन में जायेगी।

अतिविशाल तापमान (२०,००,००,००० अश सेटीग्रेड का तापमान कोई मजाक की बात नही है!) के कारण नाभिको के संलयन को तापनाभिकीय अभिक्रिया कहते हैं।

प्रकृति मे (पृथ्वी पर नही) ये अभिक्रियाए बिल्कुल सामान्य बात है। तापनाभिकीय ऊर्जा का इस्तेमाल लोग तब भी करते थे ,जब उन्हे यह ज्ञान नही था कि वे इन्सान है। अरबो वर्षो से तापनाभिकीय रिएक्टर हमारे सिर के ऊपर टगा हुआ है – यह हमारा प्यारा सूरज ही है।

इसके गर्भ में कोटि-कोटि वर्षो से अनवरत तापनाभिकीय अभिक्रिया हो रही है और इन सभी वर्षो से पृथ्वी सूर्य से ऊर्जा पा रही है।

ऐसे ही प्राकृतिक रिएक्टर – तारे – सारे आकाश मे फैले हुए है। बस वे हमसे इतने दूर है कि उनकी ऊर्जा हम तक प्राय पहुच ही नही पाती, असीम अतरिक्ष मे खो जाती है।

तापनाभिकीय अभिक्रिया न केवल इस बात मे अच्छी है कि इससे ऊर्जा की प्रचुरता होगी। इसका दूसरा गुण है – स्वच्छता।

सम्भवत: तापनाभिकीय ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा मे रूपातरित किया जायेगा। ऐसे स्टेशनो के लिए अभी कोई नाम नही सोचा गया है, लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि ये स्टेशन बनेंगे। और हमें बहुत अधिक समय तक प्रतीक्षा भी नही करनी होगी – बस दस-पंद्रह साल, ऐसा वैज्ञानिकों का ख्याल है।

हाइड्रोजन के साथ एक और रोचक व महत्त्वपूर्ण योजना जुड़ी हुई है। सबके जाने-पहचाने पेट्रोल के स्थान पर इसका उपयोग करने की सोची जा रही है। इसके लिए कम से कम दो कारण है।

पहला कारण सभी जानते हैं – इजनो में पेट्रोल जलाना फिजूलखर्ची है। महान रूसी रसायनविज्ञानी द्मीत्री इवानोविच मेंदेलेयेव भी कहा करते थे कि तेल (या पेट्रोल) जलाने का अर्थ है नोटों से अंगीठी गरम करना। और

यह सोलह आने सच बात है, जो आज खास तौर पर स्पष्ट हो गई है। हम यह बता चुके हैं कि तेल से हजारों उपयोगी पदार्थ पाये जा सकते है। कपड़ों और औषधियों से लेकर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तक। और हम हैं कि इस खनिज तेल को शोधित करके पेट्रोल, मिट्टी का तेल आदि बनाते है और न बन पाई क़मीज़ें, सूट, मशीनों के पुर्जे, दवाइयां और खाना जलाते है...

दूसरा कारण। आज यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि तेल पदार्थों के जलने से निकला धुआ हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल को दूषित करता है। और जितना अधिक हम तेल जलाते हैं उतना ही अधिक दूषण होता है। एक मोटरगाड़ी साल में एक टन हानिकारक पदार्थ हवा में छोड़ती है। इन पदार्थों का प्रकृति पर घातक प्रभाव पड़ता है, वे सूर्य की किरणों को रोकते है, बडे नगरो में हवा दूषित करते हैं।

संसार में आज २५ करोड से अधिक मोटरगाडियां है, आकाश में लाखों विमान उडते है और समुद्रो मे हजारों जहाज चलते है। इन मोटरगाडियो, विमानो और जलपोतो मे से प्रत्येक धुआ छोड़ता है।

लेकिन लोगों के पास और कोई रास्ता नही है। तेल और पेट्रोल जितना अच्छा ईंधन और कोई नही है।

फिलहाल नही है। लेकिन बहुत सम्भव है कि ऐसा ईंधन बना लिया जायेगा। हाइड्रोजन ऐसा ईंधन बन सकती है। अठारहवी सदी के रूसी वैज्ञानिक लोमोनोसोव को भी यह ज्ञात था कि हाइड्रोजन और आक्सीजन को मिला दिया जाये, तो पानी बनता है और ऊष्मा निकलती है।

अब वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की इस विचार में खास रुचि जागी है। अनेक वैज्ञानिकों का यह मत है कि हाइड्रोजन सबसे अच्छा ईंधन है। पहली बात सागरों-महासागरों में इसका अक्षय भंडार है। दूसरे, हाइड्रोजन जलाये जाने पर गन्दगी नहीं होती। आक्सीजन के साथ मिलकर इससे वहीं पानी बनता है। इसलिए हाइड्रोजन सबसे "स्वच्छ" ईंधन है। "हाइड्रोजन" इंजन की "चिमनी" से जल-वाष्प ही निकलेंगे।

हाइड्रोजन ईंधन का उपयोग परिवहन के किसी भी साधन में, उद्योगों में, घरों को गरमाने के लिए तथा बिजली बनाने के लिए किया जा सकेगा।

आजकल हाइड्रोजन रासायनिक विधि द्वारा तेल से पाई जाती है। यह विधि खासी महंगी है और इससे हाइड्रोजन कम मिलती है। लेकिन एक दूसरी विधि भी है, इसे विद्युत-अपघटन कहते है।

पानी में से सशक्त विद्युत धारा गुजारी जाती है। वह पानी को हाइड्रोजन और दूसरे कणों मे अपघटित करती है। हाइड्रोजन हल्की गैस है। वह ऊपर उठती है और पानी से बाहर निकलती है। यहा उसे "पकडकर" सिलडरो मे जमा करते है।

विद्युत-अपघटन के लिए बहुत अधिक बिजली चाहिए। इसलिए हाइड्रोजन का उत्पादन बड़े पैमाने पर हम तभी कर सकेंगे, जब हमारे पास विद्युत ऊर्जा पर्याप्त मात्रा मे होगी। और इसकी प्रचुरता तब होगी जब परमाणु और तापनाभिकीय बिजलीघर बड़े पैमाने पर काम करने लगेंगे।

सो देखो, कैसी शृंखला बनती है तापनाभिकीय अभिक्रिया – विद्युत ऊर्जा – विद्युत-अपघटन – हाइड्रोजन, इजनो के लिए ईंधन।

इजीनियरों ने तो यह भी सोच लिया है कि यह शृंखला व्यावहारिक रूप मे कैसी होगी। सागरो-महासागरो मे प्लावी (तैरते) परमाणु बिजलीघर बनाये जायेगे। उनसे मिली बिजली हाइड्रोजन पाने के काम आयेगी। प्राप्त हाइड्रोजन को पाइपलाइनों से थल पर भेजा जायेगा। वहा कारखानो मे इस हल्की गैस को द्रवीभूत किया जायेगा और पाइपलाइनो से या सिलडरो मे उपयोग के स्थान तक भेजा जायेगा।

लेकिन अमल में सब कुछ इतना आसान नही है। द्रव हाइड्रोजन कमरे के तापमान पर भी तेजी से वाष्पित होती है। इसलिए जिस टंकी मे वह रखी हो उसे बंद रखना चाहिए, लेकिन उसे बिल्कुल बंद कर दे, तो टंकी मे बहुत अधिक हाइड्रोजन वाष्प जमा हो जायेगी और टंकी फट जायेगी। इसलिए हाइड्रोजन खुली टंकियो मे रखते है। इनका राज यह है कि ये केवल इतनी खुली होती है कि फटें न और कम से कम हाइड्रोजन बाहर निकले। यह क्षति न्यूनतम हो इसके लिए हाइड्रोजन को बहुत ठंडा करना चाहिए – शून्य से दो-ढाई सौ अंश सेंटीग्रेड नीचे तक। कहना न होगा कि ऐसे "थर्मस" बनाना बहुत मुश्किल है। खास तौर से मोटरगाड़ियों के लिए, क्योंकि वे पेट्रोल की टंकियो से बड़े नहीं होने चाहिए।

यह गौनह आने मन बात है, जो आज गाम तौर पर म्पष्ट हो गई है। हम यह बता चुके हैं कि तेल मे हजारों उपयोगी पदार्थ पाये जा सकते हैं। कपडो और औपधियो मे लेकर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तक। और हम हैं कि इस खनिज तेल को शोधित करके पेट्रोल, मिट्टी का तेल आदि बनाते हैं और न बन पाई कमीजे, सूट, मशीनों के पुर्जे, दवाइया और खाना जलाते हैं ..

दूसरा कारण। आज यह निश्चित रूप मे ज्ञात है कि तेल पदार्थों के जलने मे निकल धुआ हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल को दूषित करता है। और जितना अधिक हम तेल जलाते उतना ही अधिक दूषण होता है। एक मोटरगाडी माल मे एक टन हानिकारक पदार्थ हवा मे छोडती है। इन पदार्थों का प्रकृति पर घातक प्रभाव पड़ता है, वे सूर्य की किरणों को रोकते है, बड़े नगरों मे हवा दूषित करते हैं।

ससार मे आज २५ करोड मे अधिक मोटरगाड़िया हैं, आकाश में लाखों विमान उडते है और समुद्रों मे हजारों जहाज़ चलते हैं। इन मोटरगाड़ियों, विमा और जलपोतों मे से प्रत्येक धुआ छोड़ता है।

लेकिन लोगों के पास और कोई रास्ता नहीं है। तेल और पेट्रोल जितना अच्छा ईंधन और कोई नही है।

फ़िलहाल नही है। लेकिन बहुत सम्भव है कि ऐसा ईंधन बना लिया जायेगा। हाइड्रोजन ऐसा ईंधन बन सकती है। अठारहवी सदी के रूसी वैज्ञानिक लोमोनोसोव को भी यह ज्ञात था कि हाइड्रोजन और आक्सीजन को मिला दिया जाये, तो पानी बनता है और ऊष्मा निकलती है।

अब वैज्ञानिकों और इंजीनियरो की इस विचार में खास रुचि जागी है। अनेक वैज्ञानिकों का यह मत है कि हाइड्रोजन सबमे अच्छा ईंधन है। पहली बात सागरों-महासागरों में इसका अक्षय भंडार है। दूसरे, हाइड्रोजन जलाये जाने पर गायब नहीं होती। आक्सीजन के साथ मिलकर इससे वही पानी बनता है। इसलिए हाइड्रोजन सबसे "स्वच्छ" ईंधन है। "हाइड्रोजन" इंजन की "चिमनी" से जल-वाष्प ही निकलेगी।

हाइड्रोजन ईंधन का उपयोग परिवहन के किसी भी साधन में, उद्योगो में, घरों को गरम करने के लिए तथा बिजली बनाने के लिए किया जा सकेगा।

आजकल हाइड्रोजन रासायनिक विधि द्वारा तेल से पाई जाती है। यह विधि खासी महंगी है और इससे हाइड्रोजन कम मिलती है। लेकिन एक दूसरी विधि भी है, इसे विद्युत-अपघटन कहते है।

पानी मे से सशक्त विद्युत धारा गुजारी जाती है। वह पानी को हाइड्रोजन और दूसरे कणों मे अपघटित करती है। हाइड्रोजन हल्की गैस है। वह ऊपर उठती है और पानी से बाहर निकलती है। यहा उसे "पकडकर" सिलडरो मे जमा करते है।

विद्युत-अपघटन के लिए बहुत अधिक बिजली चाहिए। इसलिए हाइड्रोजन का उत्पादन बड़े पैमाने पर हम तभी कर सकेगे, जब हमारे पास विद्युत ऊर्जा पर्याप्त मात्रा मे होगी। और इसकी प्रचुरता तब होगी जब परमाणु और तापनाभिकीय बिजलीघर बडे पैमाने पर काम करने लगेगे।

सो देखो, कैसी शृखला बनती है तापनाभिकीय अभिक्रिया – विद्युत ऊर्जा – विद्युत-अपघटन – हाइड्रोजन, इजनो के लिए ईंधन।

इजीनियरों ने तो यह भी सोच लिया है कि यह शृखला व्यावहारिक रूप में कैसी होगी। सागरो-महासागरो मे प्लावी (तैरते) परमाणु बिजलीघर बनाये जायेगे। उनसे मिली बिजली हाइड्रोजन पाने के काम आयेगी। प्राप्त हाइड्रोजन को पाइपलाइनों से थल पर भेजा जायेगा। वहा कारखानो मे इस हल्की गैस को द्रवीभूत किया जायेगा और पाइपलाइनो से या सिलडरो मे उपयोग के स्थान तक भेजा जायेगा।

लेकिन असल मे सब कुछ इतना आसान नही है। द्रव हाइड्रोजन कमरे के तापमान पर भी तेजी से वाष्पित होती है। इसलिए जिस टकी मे वह रखी हो उसे बद रखना चाहिए, लेकिन उसे बिल्कुल बद कर दे, तो टकी मे बहुत अधिक हाइड्रोजन वाष्प जमा हो जायेगी और टकी फट जायेगी। इसलिए हाइड्रोजन खुली टकियो मे रखते है। इनका राज यह है कि ये केवल इतनी खुली होती है कि फटे न और कम से कम हाइड्रोजन बाहर निकले। यह क्षति न्यूनतम हो इसके लिए हाइड्रोजन को बहुत ठंडा करना चाहिए – शून्य से दो-ढाई सौ अंश सेंटीग्रेड नीचे तक। कहना न होगा कि ऐसे "थर्मस" बनाना बहुत मुश्किल है। खास तौर से मोटरगाड़ियों के लिए, क्योंकि वे पेट्रोल की टकियों से बड़े नहीं होने चाहिए।

आओ, अब पीछे एक नज़र डालें। जो हमने जाना है, उसे याद करें।

हमने ऊर्जा पाने की दो शृंखलाएं देखी है।

पहली शृंखला के आरम्भ में है – ईंधन। इसमें रासायनिक ऊर्जा निहित होती है। ईंधन जलाकर हम रासायनिक ऊर्जा को ताप ऊर्जा मे रूपांतरित करते हैं। ईंधन शृंखला ही आजकल प्रमुख है।

दूसरी शृंखला के आरम्भ मे है परमाणु नाभिक – परमाणु अथवा नाभिकीय ऊर्जा का भंडार। नाभिक का विखंडन करके हम नभिकीय ऊर्जा को भी ताप ऊर्जा मे रूपांतरित करते हैं। निकट भविष्य मे हम नाभिकों के संलयन से भी ऊष्मा पाने लगेंगे। नाभिकीय शृंखला आज प्रमुख नही है। लेकिन भविष्य में वह सबसे महत्वपूर्ण हो जायेगी।

इन दो शृंखलाओं की अनिवार्य कड़ी है – ऊष्मा, ताप ऊर्जा। ताप शृंखला में भी और नाभिकीय शृंखला मे भी ऊष्मा के बिना काम चलाना लोगों को नहीं आता और वे शायद ही कभी यह सीख भी पायें।

लेकिन ये दो शृंखलाएं ही एकमात्र हों, ऐसी बात नहीं है। मानवजाति के पास ऊर्जा के दूसरे स्रोत भी हैं, और इसका अर्थ है कि दूसरी ऊर्जा शृंखलाएं भी हैं। इनमें से कुछ का उपयोग वे काफी समय से कर रहे हैं, और कुछ का उपयोग करने का अभी रास्ता ही ढूंढ रहे हैं।

जल ऊर्जा का उपयोग हम कैसे करते हैं?

तुमने शायद कभी ऐसा नजारा देखा हो. लकड़ी की नली मे से पहिये पर पानी गिरता है। पहिया घूमता है और बड़े से गोल चपटे पत्थर के पाट को घुमाता है। पाट के बीचोंबीच छेद होता है। उसमे अनाज डाला जाता है। घूमते पाट और नीचे के अचल पाट के बीच अनाज पिसता जाता है। आटे की धार बोरी में गिरती जाती है और चक्की वाला बोरे उठा-उठाकर रेहड़े पर लादता जाता है। यह मशहूर पनचक्की ही है, जो सदियो से मानवजाति का "पेट भरती" आई है।

या एक और दृश्य देखो। पानी के पहिये से लकड़ी की मोटी धुरी चली गई है। धुरी पर दांतेदार पहिये लगे हुए हैं। ये पहिये बरमे को घुमाते है, या हथौड़ा उठाते है या धौंकनी चलाते हैं। यह लोहारखाना है।

चक्की में आटा पीसा जाता था। लोहारखाने मे जहाजों के लिए लंगर या घोड़ों के लिए नाल बनाये जाते थे। इन "कारखानों" में तरह-तरह के काम होते थे और वहा अलग-अलग तरह की मशीने काम करती थी। लेकिन काम के लिए बल यानी ऊर्जा ये एक ही स्रोत – जल – से पाती थी।

जल की ऊर्जा गति में है। खडे जल में कोई पहिया नही घूमेगा, चाहे कितनी भी चतुराई दिखा लो।

वैसे यह बात लोग मदा नही समझते थे। मध्य युग मे वेनिस नगर मे एक खास तालाब था, जहा मिस्त्रियो के मुकाबले होते थे। वे निश्चल जल से काम लेने की कोशिश करते थे, लेकिन कोई बात नही बनती थी। अपनी असफलता के वे तरह-तरह के कारण बताते थे। कभी कहते पानी ज्यादा ठंडा है, कभी कहते धूप बहुत तेज है। लेकिन कारण तो दूसरा ही था: पानी बहता जो नही था।

हमारी नदिया कहा मे आती है और कहा जाती हैं? वे ऊपर मे नीचे की ओर बहती है। पर्वतों-टीलो मे मैदानो मे और अनत. सागर तक। लेकिन उन्हे गति कौन प्रदान करता है? कौन सी शक्ति है वह, जो अपार जल राशि को सैकड़ो-हजारो किलोमीटर

तक बहाते हुए सागरों-महासागरों तक ले जाती है? इस प्रश्न का उत्तर भी ज्ञात है: गुरुत्व बल। आखिर गिलास से बिखरा पानी हमेशा फर्श पर ही गिरता है।

लेकिन यह जल जो केवल ऊपर से नीचे ही बह सकता है, ऊपर पहाड़ों पर कैसे पहुचता है? वह कौन सा शक्तिशाली पम्प है, जो इसे ऊपर चढ़ाता है? यह पम्प है सूर्य।

सूरज की किरणे पत्थर, मिट्टी और पेड़-पौधों को ही गरम नही करती। वे सागरों-महासागरों और झीलों-नदियों के पानी को भी गरम करती है। पानी की भाप वायुमण्डल मे बहुत ऊपर उठती है। प्रति मिनट वह अपने साथ एक अरब टन पानी ले जाती है। जब भाप हवा की ठंडी परतों तक पहुचती है तो वह फिर से पानी बन जाती है। पानी की बूदे पृथ्वी की ओर बढ़ती है और वर्षा या हिम के रूप मे पृथ्वी पर गिरती हैं। यहा ये छोटी-छोटी जल-धाराए और नदिया बन जाती है और फिर से अपनी जलराशि समुद्र की ओर ले जाती है। बस चक्र पूरा हो जाता है।

इस भव्य गति को प्रकृति मे जल का चक्र कहते है।

हजारों साल पहले की ही भाति आज भी जल मनुष्य के लिए काम कर रहा है। हा, आज वह केवल चक्की चलाने या लौहार की भट्ठी मे आग तेज करने का ही काम नही करता। अब इसका प्रमुख कार्य है बिजली पैदा करना।

नदी पर बाध बाधा जाता है। बाध मे कुछ पाइप लगाये जाते है। हर पाइप मे कपाट और जल टर्बाइन लगायी जाती है। टर्बाइन विद्युत जेनरेटर से जुडी होती है।

पानी के रास्ते मे बाध के रूप में रुकावट आने से पानी ऊपर चढने लगता है। जितना ऊंचा उठता जाता है, उतनी ही अधिक ऊर्जा उसमे जमा होती जाती है। जब पाइप का कपाट खोला जाता है, तो पानी टर्बाइन की ओर बढ चलता है और भयावह बल से टर्बाइन के फलक पर गिरता है। टर्बाइन घूमने लगती है। उसके साथ ही विद्युत जेनरेटर घूमता है और बिजली बनती है।

बाध, टर्बाइने और जेनरेटर—यह सब मिलकर **पनबिजलीघर** कहलाता है।

सोवियत संघ में बहुत सी भरी-पूरी, विशाल नदिया है। सोवियत सघ के यूरोपीय भाग मे वोल्गा, दनेप्र, कामा, आदि सभी बड़ी नदिया बिजली पैदा

करती है। वोल्गा पर बिजलीघरों की पूरी शृंखला बनाई गई है। द्नेप्र नदी पर भी कई बिजलीघर हैं।

साइबेरिया की नदियों में अभी भी अप्रयुक्त ऊर्जा बहुत अधिक है। इसलिए इन विशाल नदियों जैसे ही शक्तिशाली बिजलीघर वहां बनाये जा रहे हैं। संसार का सबसे बड़ा पनबिजलीघर क्रास्नोयार्स्क नगर के पास येनिसेई नदी पर बनाया गया है। येनिसेई पर ही अब इससे भी अधिक शक्तिशाली सयानो-शूशेन्स्काया पनबिजलीघर बन रहा है। इसके लिए स्थान ऊंचे-ऊंचे खड़े किनारों वाले दर्रे में चुना गया है। कंक्रीट के ऊंचे बांध से येनिसेई का रास्ता रोक दिया गया है। इस बांध में दस टर्बाइनें और जेनरेटर लगाये जायेंगे।

पनबिजलीघरों के निर्माण पर खर्चा बहुत आता है। लेकिन इनसे जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वह सबसे सस्ती होती है, क्योंकि इसका स्रोत "मुफ़्त का" सूरज है। याद है न हमने सौर "पम्प" की चर्चा की थी?

परन्तु पता है, जल को अपनी ऊर्जा केवल सूर्य ही नहीं देता। चंद्रमा भी यही काम करता है। नही, वह जल को गरम नही करता, भाप को आकाश में नहीं उठाता। वह तो अपने गुरुत्व बल से काम करता है।

सुविदित है कि सभी खगोलीय पिंड एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। गुरुत्व बल पिंड के भार या यह कहिये कि द्रव्यमान पर निर्भर होता है। द्रव्यमान जितना अधिक होता है उतने ही अधिक बल से वह पिंड अपने चारों ओर के सभी पिंडों को अपनी ओर आकर्षित करता है। पिंड एक दूसरे से जितना अधिक दूर होते हैं, गुरुत्वाकर्षण उतना ही कम होता है और जितना पास होते हैं, गुरुत्वाकर्षण उतना ही अधिक होता है।

पृथ्वी का निकटतम खगोलीय पिंड चंद्रमा काफ़ी बल से पृथ्वी को और उस पर जो कुछ है उसे अपनी ओर आकर्षित करता है। चंद्रमा पृथ्वी के किसी एक बिंदु के ऊपर स्थित नही, बल्कि उसकी परिक्रमा करता है। अपने पथ पर वह उन वस्तुओं को "ऊपर उठाता" है, जिनके ऊपर से गुजर रहा होता है। स्थल पर इसका आभास नहीं होता। लेकिन समुद्रों में लहर उठती है, और यह लहर काफ़ी ऊंची होती है। दिन-रात में दो बार बिल्कुल ठीक समय पर वह सभी सागरों-महासागरों से

गुज़रती है। अथाह जलराशि ऊपर उठती है और फिर नीचे आती है, जिससे तटों पर ज्वार-भाटा आता है।

"चांद्र" लहरों में अपार ऊर्जा होती है – ससार के सभी पनबिजलीघरो में जितनी विद्युत ऊर्जा बनती है, उससे सौ गुनी अधिक। हा, सागरों-महासागरों में फैली इस ऊर्जा को "बटोरना" असम्भव है। आखिर कही प्रशात महासागर के बीचोबीच तो पनबिजलीघर बनाया नही जा सकता। लेकिन इसकी कुछ "खुरचन" हासिल की जा सकती है।

इस ऊर्जा को "बटोरने" का तरीका यह है। तग मुहाने वाली खाडी खोजी जाती है। मुहाने पर बांध बनाया जाता है और उसमे टर्बाइने व जेनरेटर लगाये जाते हैं। ज्वार और भाटे के समय पाइपों से पानी टर्बाइनों तक पहुचता है और उन्हे घुमाता है।

सामान्यत: पानी तीन-चार मीटर ऊंचा उठता है। लेकिन कुछ स्थानों पर ज्वार की ऊंचाई दस मीटर तक होती है। और लहर जितनी ऊची होती है, उतने ही अधिक जोर से पानी टर्बाइनों के फलको पर प्रहार करता है यानी उतनी ही अधिक ऊर्जा देता है। सोवियत वैज्ञानिकों का मत है कि ओखोत्स्क सागर के उत्तरी "कोने" मे, जहां पेंजिना नदी इसमें गिरती है, क्रास्नोयार्स्क पनबिजलीघर से तिगुनी क्षमता का ज्वार बिजलीघर बनाया जा सकता है।

सागरों-महासागरो के तटो पर पहले बिजलीघर फ़ास और सोवियत सघ मे बना लिये गये है। कोला प्रायद्वीप पर बने बिजलीघर की क्षमता अधिक नही है। पर सोवियत इंजीनियर और वैज्ञानिक उत्तरी सागरो के तटो पर ज्वार बिजलीघरो के निर्माण की नई परियोजनाएं तैयार कर रहे है। उनसे देश के उत्तरी भागों को ऊर्जा मिलेगी, जहा वर्ष प्रति वर्ष इसकी माग बढ रही है।

तुम्हें याद है हमने मध्ययुगीन कारीगरों का जिक्र किया था, जो गहरे पानी से काम कराने की कोशिश करते थे? और कैसे उनके सारे प्रयास असफल रहते थे? अभी हाल ही मे सोवियत वैज्ञानिकों ने इसका भी उपाय सोच लिया है।

समुद्र या बडी झील मे बहुत गहराई पर विशाल सिलडर उतारा जाता है। इस

करती है। वोल्गा पर बिजलीघरों की पूरी शृंखला बनाई गई है। द्नेप्र नदी पर भी कई बिजलीघर हैं।

साइबेरिया की नदियों में अभी भी अप्रयुक्त ऊर्जा बहुत अधिक है। इसलिए इन विशाल दियों जैसे ही शक्तिशाली बिजलीघर वहां बनाये जा रहे हैं। संसार का सबसे बडा पनबिजलीघर क्रास्नोयार्स्क नगर के पास येनिसेई नदी पर बनाया गया। येनिसेई पर ही अब इससे भी अधिक शक्तिशाली सयानो-शूशेन्स्काया पनबिजलीघर बन हा है। इसके लिए स्थान ऊंचे-ऊंचे खड़े किनारों वाले दर्रे में चुना गया है। कंक्रीट के ऊंचे बांध से येनिसेई का रास्ता रोक दिया गया है। इस बांध में दस टर्बाइनें और जेनरेटर गाये जायेंगे।

पनबिजलीघरों के निर्माण पर खर्चा बहुत आता है। लेकिन इनसे जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वह सबसे सस्ती होती है, क्योंकि इसका स्रोत "मुफ़्त का" सूरज है। याद है न हमने सौर "पम्प" की चर्चा की थी?

परन्तु पता है, जल को अपनी ऊर्जा केवल सूर्य ही नहीं देता। चंद्रमा भी यही काम करता है। नही, वह जल को गरम नहीं करता, भाप को आकाश में नही उठाता। वह तो अपने गुरुत्व बल से काम करता है।

सुविदित है कि सभी खगोलीय पिंड एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। गुरुत्व बल पिंड के भार या यह कहिये कि द्रव्यमान पर निर्भर होता है। द्रव्यमान जितना अधिक होता है उतने ही अधिक बल से वह पिंड अपने चारों ओर के सभी पिंडों को अपनी ओर आकर्षित करता है। पिंड एक दूसरे से जितना अधिक दूर होते हैं, गुरुत्वाकर्षण उतना ही कम होता है और जितना पास होते हैं, गुरुत्वाकर्षण उतना ही अधिक होता है।

पृथ्वी का निकटतम खगोलीय पिंड चंद्रमा काफ़ी बल से पृथ्वी को और उस पर जो कुछ है उसे अपनी ओर आकर्षित करता है। चंद्रमा पृथ्वी के किसी एक बिंदु के ऊपर स्थित नही, बल्कि उसकी परिक्रमा करता है। अपने पथ पर वह उन वस्तुओं को "ऊपर उठाता" है, जिनके ऊपर से गुज़र रहा होता है। स्थल पर इसका आभास नही होता। लेकिन समुद्रों में लहर उठती है, और यह लहर काफी ऊंची होती है। दिन-रात में दो बार बिल्कुल ठीक समय पर वह सभी सागरों-महासागरों से

ग़रती है। अथाह जलराशि ऊपर उठती है और फिर नीचे आती है, जिससे टों पर ज्वार-भाटा आता है।

"चाद्र" लहरों में अपार ऊर्जा होती है – ससार के सभी पनबिजलीघरो मे जितनी ग्युत ऊर्जा बनती है, उससे सौ गुनी अधिक। हा, सागरो-महासागरो मे फैली इस ऊर्जा को वटोरना" असम्भव है। आखिर कही प्रशात महासागर के बीचोबीच तो नबिजलीघर बनाया नही जा सकता। लेकिन इसकी कुछ "खुरचन" हासिल ी जा सकती है।

इस ऊर्जा को "बटोरने" का तरीका यह है। तग मुहाने वाली खाडी खोजी जाती ;। मुहाने पर बाध बनाया जाता है और उसमे टर्बाइनें व जेनरेटर लगाये जाते है। वार और भाटे के समय पाइपो से पानी टर्बाइनो तक पहुचता है और न्हे घुमाता है ।

सामान्यत: पानी तीन-चार मीटर ऊचा उठता है। लेकिन कुछ स्थानो पर ज्वार की ऊचाई दस मीटर तक होती है। और लहर जितनी ऊची होती है, उतने ही अधिक ज़ोर से पानी टर्बाइनों के फलकों पर प्रहार करता है यानी उतनी ही अधिक ऊर्जा देता है। सोवियत वैज्ञानिको का मत है कि ओख़ोत्स्क सागर के उत्तरी "कोने" मे, जहा पेंजिना नदी इसमें गिरती है, क्रास्नोयार्स्क पनबिजलीघर से तिगुनी क्षमता का ज्वार बिजलीघर बनाया जा सकता है।

सागरों-महासागरों के तटों पर पहले बिजलीघर फ्रास और सोवियत सघ मे बना लिये गये हैं। कोला प्रायद्वीप पर बने बिजलीघर की क्षमता अधिक नही है। पर सोवियत इंजीनियर और वैज्ञानिक उत्तरी सागरो के तटों पर ज्वार बिजलीघरो के निर्माण की नई परियोजनाए तैयार कर रहे है। उनसे देश के उत्तरी भागो को ऊर्जा मिलेगी, जहा वर्ष प्रति वर्ष इसकी माग बढ रही है।

तुम्हे याद है हमने मध्ययुगीन कारीगरो का ज़िक्र किया था, जो खड़े पानी मे काम कराने की कोशिश करते थे? और कैसे उनके सारे प्रयास असफल रहते थे? अभी हाल ही मे सोवियत वैज्ञानिको ने इसका भी उपाय सोच लिया है।

समुद्र या बडी झील मे बहुत गहराई पर विशाल सिलडर उतारा जाता है। इस

सिलंडर के ढकने मे एक या कुछेक पाइप लगाये जाते है, जो कपाट मे बंद होते हैं। पाइपो मे टर्बाइनें और जेनरेटर लगे होते है। कपाट खोलने पर पानी पाइपों में जाता है और वहा टर्बाइनो को घुमाता है। टर्बाइनें तब तक काम करेंगी जब तक कि सिलडर पूरा भर नही जाता। इसके बाद वे रुक जायेंगी।

तुम पूछोगे, ऐसे स्टेशन की क्या जरूरत, जो सारा समय काम नही कर सकता? जरूरत यह है: बिजलीघर वाले जानते है कि सुबह के समय, जब कारखानों में मशीनें च की जाती है और शाम को जब सब बत्तिया, टेलीविज़न जलते हैं, तो ऊर्जा की मांग बहुत अधिक होती है और रात को बहुत कम।

सुबह-शाम स्टेशनो पर जेनरेटर अपनी पूरी क्षमता से काम करते हैं। तो भी ऊर्जा पूरी नही पड़ती। और रात को अधिकाश जेनरेटर वद रहते हैं। उनकी ऊर्जा की किसी को आवश्यकता नही होती। अब ये जलगत स्टेशन कठिन समय में पृथ्वी पर बने स्टेशनों की मदद करेंगे। लेकिन इसके लिए इन्हें दिन में काम करने को तैयार करना चाहिए – सिलडरों में से पानी निकालना चाहिए। ऐसा रात को बिजली के पम्पों से आसानी से किया जा सकता है, रात को तो बहुत सी बिजली फालतू होती है। जलगत स्टेशन एक तरह से विद्युत ऊर्जा "स्टोर" करके रखेंगे।

यह तो तुम अब तक समझ ही गये होगे कि ईंधन भी और जल भी स्वयं ऊर्जा पैदा नही करते। वे तो बस सूर्य की ऊर्जा के "भडारी" हैं।

पर क्या इनके बिना काम नही चल सकता? क्या हम सीधे सूर्य से ऊर्जा नही ले सकते? ले सकते है। तो सुनो, कैसे यह किया जाता है।

सौर किरणों की ऊर्जा

"हा, सदा रहे सूरज" – एक बाल गीत में ये शब्द हैं। कितना अच्छा होता है, जब सूरज निकला होता है, खूब धूप होती है, जब धूप सेंकी जा सकती है, मीठे-मीठे सेब और लाल-लाल तरबूज खाये जा सकते हैं।

लेकिन सूरज इसीलिए नहीं निकलता कि हम धूप सेंकें। यह तो मामूली सी बात है। असल बात तो दूसरी है।

सूरज की ऊर्जा पृथ्वी पर सारे जीवन का स्रोत है। सूरज की किरणों के स्पर्श से कोंपले फूटती हैं, फल पकते हैं, बालियों में दाने पड़ते हैं, भीमकाय वृक्ष आकाश की ओर सिर उठाते हैं, धरती पर हरी-हरी घास की चादर बिछती है।

लेकिन रेगिस्तानों में, जहा पानी नही होता, चिलचिलाती धूप से रेत तपती है, पत्थर तक चटख जाते हैं। वहां सूरज की जीवनदायी ऊर्जा विनाशकारी और अनावश्यक होती है।

वैसे "फ़ालतू" सौर ऊर्जा रेगिस्तानों में ही नही होती। आखिर सूरज की हर किरण तो अपना घास का तिनका या पत्ती नही पाती। धूप से नगरों की सड़कें और मकानों की छतें भी तपती हैं। सो लोग अरसे से यह सोचते आये हैं कि कैसे वे इस "फालतू" ऊर्जा का सदुपयोग करें।

उन्होंने भाति-भाति की युक्तिया बनाई हैं। इनमे सबसे सरल है – आवर्धक लेंस। हा, वही जो तुमने भी हाथ में लेकर देखा होगा। वह सूर्य के प्रकाश को एक पतली किरण मे जमा करता है और इस किरण से कागज या लकड़ी के टुकड़े से धुआ निकलने लगता है, और, छिपाना क्या, कभी-कभी तुम्हारी अपनी निकर से भी। लेंस जितना बड़ा होता है, धूप की यह "सूई" उतनी ही तेज होती है। निकर जलाने के लिए तो छोटा-सा लेंस ही काफी है। पर साफ दुपहरी में केतली भर पानी उबालने के लिए लेंस ट्रैक्टर के पहिये जितना बड़ा होना चाहिए। और बाल्टी या ड्रम भर पानी उबालने के लिए? इसके लिए तो बहुत ही बड़े लेंस चाहिए।

हा, यह सौर ऊर्जा को "पकड़ने" की कोई बहुत अच्छी विधि नहीं है।

तुमने उन सौर बैटरियो के बारे में सुना होगा, जिनसे अंतरिक्ष यानो को ऊर्जा मिलती है। और हो सकता है तस्वीरों मे देखा भी हो। अंतरिक्ष यानो पर लगे जालीदार पर सौर बैटरिया ही हैं। इन्हे विशेष सामग्री – अर्धचालकों – से बनाते हैं। जब सौर किरणें इनसे टकराती हैं तो इनमें बिजली पैदा होती है।

यह बिजली एक्युमुलेटरो मे जमा की जाती है, प्राय वैसे ही एक्युमुलेटरों से जैसे कारों में लगे होते है। सो अंतरिक्ष यान पर सदा बिजली होती है।

फ़िलहाल सौर बैटरियां बहुत अच्छी तरह काम नही करती है। उन तक जो सौर ऊर्जा आती है उसके केवल दसवें भाग को ही वे विद्युत ऊर्जा मे बदलती है। इसलिए इनका उपयोग केवल अंतरिक्ष में ही किया जाता है, जहा ऊर्जा पाने का दूसरा कोई उपाय नही है।

लेकिन अगर ये बैटरियां अब से केवल तीन गुना ही अच्छा काम करने लगें तो पृथ्वी पर भी इन्हे इस्तेमाल किया जा सकेगा। सौर बिजलीघर शायद रेगिस्तानो मे ही बनाये जायेंगे। तपी रेत पर अर्धचालकों की विशाल "चादर" बिछा दी जायेगी। सौर किरणें उसे अपनी ऊर्जा देंगी, जो विद्युत धारा बन जायेगी। इसे स्टेशन पर जमा करके बिजली के तारों से घरो, स्कूलो, मिलो-कारखानो तक पहुचाया जायेगा।

सूरज हमें जो ऊर्जा भेजता है, वह सारी की सारी पृथ्वी की सतह तक नही आ पाती। तुम जानते ही हो कि पृथ्वी के चारों ओर घना वायुमण्डल है, वायुमण्डल मे बादल है, कारखानों की चिमनियों से निकली राख है, धूल के कण है। इसलिए वैज्ञानिक अब अर्धचालकों वाला बिजलीघर अतरिक्ष मे बनाने की तैयारी कर रहे है। वहा सौर किरणों के लिए कोई बाधा नही है। इस स्टेशन पर बनी बिजली को सशक्त रेडियो किरणों का रूप प्रदान करके पृथ्वी पर भेजा जायेगा। यहा ये किरणे फिर से विद्युत धारा में बदल जायेंगी।

वैज्ञानिक एक और सौर-परियोजना पर भी विचार कर रहे हैं। यह परियोजना स्वय प्रकृति ने "सुझाई" है।

यह तो तुम जान ही गये हो कि पेड़-पौधों और जीव-जतुओ के लिए ऊर्जा का स्रोत सूर्य है। पेड़ो की पत्तियां और घास के तिनके सौर किरणो को ग्रहण करते हैं। उनके प्रभाव से वनस्पतियों के ऊतकों में एक पदार्थ दूसरे पदार्थो मे रूपातरित हो जाते हैं। इन्ही में ऊर्जा का संचय होता है। लेकिन अब यह सौर ऊर्जा नही, रासायनिक ऊर्जा होती है। जब हम रोटी खाते है और दूध पीते है, तो इसी ऊर्जा का उपयोग करते है। आखिर खाना लोगों के लिए ऊर्जा का स्रोत ही है। वैसे ही जैसे वनस्पतियों के लिए ऊर्जा का स्रोत सूरज है।

कितना अच्छा हो अगर हम सजीव कोशिकाओ से सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा मे बदलना सीख लें। और फिर इन सजीव कोशिकाओ से अरबो गुना शक्तिशाली "कोशिका-कारखाना" बना लें।

तब रेगिस्तानो मे और दूसरी जगहों पर भी, जहा धूप काफी होती है, आश्चर्यजनक ऊर्जा खेत बन सकते है। जरा कल्पना करो: रेगिस्तान की रेत पर चिलचिलाती धूप मे पारदर्शी पाइप बिछे हुए है। पाइपों में "सजीव", या जैसे कि रसायनविज्ञानी कहते है, कार्बनिक घोलों की नादिया बहती है। वैसे ही घोलों की जैसे वनस्पतियों की कोशिकाओ मे होते है। ये घोल सौर किरणों को ग्रहण करते है, और इनमें रासायनिक ऊर्जा से भरे नये पदार्थ बन जाते है। पम्प इन घोलों को कारखानो मे पहुचाते है। वहा

इन्हे फ़िल्टरों से "छाना" जाता है और ऊर्जा मुक्त पदार्थ अलग किये जाते हैं। "फसल बटोरकर" घोल में आवश्यक पदार्थ डाले जाते हैं और फिर से उसे ऊर्जा जमा करने भेज दिया जाता है।

लोग सदियों से प्रायः ऐसा ही करते आये है। वे जमीन में बीज बोते हैं, फसल की देखभाल करते है और धीरजपूर्वक इस बात का इंतजार करते है कि कब सूरज से गर्मी पाकर पौधा बड़ा हो जाये, पक जाये और उसकी कोशिकाओं में पौष्टिक पदार्थ जमा हो जाये। फसल काटकर अगली बुआइयों के लिए बीज जमा किये जाते हैं। और फिर या तो ऊपर का हिस्सा – गेहूं, मकई के दाने, टमाटर, या फिर नीचे का हिस्सा – आलू, गाजर, चुकदर खाते हैं। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं इनसे लोग ऊर्जायुक्त पदार्थ पाते हैं।

कृत्रिम "सौर खेतों" के लिए बहुत जगह की जरूरत होगी। और इसकी पृथ्वी पर कमी नहीं है। अफ्रीका में सहारा, एशिया में गोबी, सोवियत संघ में काराकुम रेगिस्तान हैं।

क्या इन "सौर खेतों" से लोग काफी ऊर्जा पायेंगे? हां, काफी – अभी हम जितना ईंधन जलाते है, उस सारे से प्राप्त ऊर्जा से साठ गुनी अधिक।

इसके अलावा ताप और परमाणु ऊर्जा के स्रोतों से सौर ऊर्जा का स्रोत जुड़ जाने से प्रकृति को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी। इससे वायुमण्डल, जल और मिट्टी दूषित नहीं होंगे।

गरम स्थानों से ठंडे स्थानों को ऊर्जा पहुंचाकर लोग जलवायु नियंत्रित कर सकेंगे और हमारी पृथ्वी पर जीना आज से अधिक सुविधाजनक हो जायेगा।

बड़ा प्रलोभन है इस काम में। लेकिन हो सकता है यह सब कपोलकल्पना ही हो? फिलहाल तो ऐसा ही है। लेकिन वैज्ञानिक काम कर रहे हैं। और यदि उन्होंने काम को गम्भीरता से हाथ में ले लिया है तो सौर खेत अवश्य ही बन जायेंगे।

बिजलीघर का बायलर – पृथ्वी

"'पायोनियर' तारायान के सचालन पट्ट पर लाल बत्ती जल उठी और तुरन्त ही असाधारण सूचना का भोंपू बज उठा। ड्यूटी पर स्थित पायलट ने यान के कम्प्यूटर के साथ सम्पर्क का बटन दबाया। भावहीन इलेक्ट्रोनिक स्वर बोला: 'हमारे पथ पर सामने अज्ञात खगोलीय पिंड है। दूरी डेढ पैरसेक। पिंड दो लाख किलोमीटर व्या तारे के गिर्द गोलाकार परिक्रमा में घूम रहा है। प्राप्त सूचना की जाच आरम्भ कर रहा हू ...' पायलट ने माइक्रोफोन का बटन दबाया और जल्दी से कहा. 'कमाडर कृपया केबिन में पधारें ..' अज्ञात पिड, रहस्यमय तारा। अभियान दल एक ऐसे संसार से मिलने जा रहा था, जिसके बारे में कोई कुछ नही जानता था. "

भविष्य की अतरिक्ष उडानो के बारे मे ऐसा कुछ न कुछ अवश्य पढने को मिलता है नये ग्रहों की खोज, जहां घास बैगनी होती है और आकाश काला, ऐसे तारों की खोज, जि रहस्यमय झिलमिल होती है। और ऐसी पुस्तकें पढते हुए लगता है कि सारे रहस्य अंतरिक्ष में ही हैं। जबकि एक बहुत महत्त्वपूर्ण और हो सकता है सबसे महत्त्वपूर्ण रहस्य हमारे पैरों तले – पृथ्वी के गर्भ में – छिपा हुआ है।

लोग पृथ्वी से सैकड़ों किलोमीटर ऊपर पहुचने में सफल रहे है। वे चद्रमा की यात्रा कर आये है, उन्होने मगल और शुक्र ग्रहों पर स्वचालित स्टेशन भेजे है। लेकिन पृथ्वी के गर्भ में वे गहरे नही पैठ सके है। कुछ स्थानो पर ही वे धरातल से तेरह-चौदह किलोमीटर की गहराई तक झाक सके है। लेकिन इससे अधिक गहराई पर क्या हो रहा है? और पृथ्वी के केन्द्र मे क्या हो रहा है?

पृथ्वी सख्त छिलके वाले अखरोट जैसी है – छिलका भूपर्पटी है और उसके अंदर गिरी परितप्त नाभिक है। वहां तापमान धमन भट्ठी के तापमान से अधिक है। इसका मतलब है कि वहा सभी कुछ पिघला हुआ है। सतह के पास आते हुए तापमान कम होता जाता है तो भी पच्चीस किलोमीटर की गहराई पर भी यह बहुत अधिक है – छह सौ अंश सेंटीग्रेड। पिघला पदार्थ अपार बल से "छिलके" पर ज़ोर डालता है, मानो उसे तोड़ डालना चाहता हो, और दरारों में से ऊपर उठता है। इसके रास्ते मे यदि कही पानी होता है, तो वह तुरन्त ही उबलकर भाप बन जाता है और जमीन में से गरम सोते फूटते है।

पानी गरम करने और उबालने के लिए ही लोग अमूल्य ईधन बडी मात्रा में खर्च करते हैं। और यहां पाइप लगाओ और सीधे नगरो-देहातो तक गरम-गरम पानी ले आओ। कई जगहों पर ऐसे ही किया जाता है।

इसके अलावा भूमिगत भाप और गरम पानी बिजलीघरो को पहुचाया जाता है। पाइपो से होती हुई भाप टर्बाइनों तक जाती है और उन्हे घुमाती है, इस तरह बिजली बनती है। बस वैसे ही जैसे आम ताप बिजलीघरों मे। अतर केवल इतना है कि इन बिजलीघरों मे भाप बनानेवाले बायलर लगाने की जरूरत नही होती, वे तो भूगर्भ में होते ही है। ऐसे बिजलीघरों को भूताप बिजलीघर कहते है।

सोवियत संघ में पहला ऐसा स्टेशन कमचात्का प्रायद्वीप पर बनाया गया। १९६६ में इससे मछेरों की बस्ती ओजेरनया को बिजली और गरम पानी मिलने लगा। गरम पानी मकानों को गरम करने के काम आता है, इसके अलावा पौधाघरो मे इसकी मदद से बारहो महीने सब्जियां उगाई जाती है।

दूसरे देशों में भी ऐसे स्टेशन बनाये जा रहे है। हाल ही मे फ्रास की राजधानी पेरिस के ऐन नीचे ही गरम पानी की पूरी झील का पता चला है। अब वैज्ञानिक यह सोच रहे है कि इस पानी का उपयोग किस तरह करना बेहतर रहेगा – इससे नगरवासियों के मकान गरम किये जायें या बिजलीघर मे बिजली पैदा करने के लिए इसका उपयोग किया जाये।

भूमिगत बायलरों का उपयोग करने के लिए गरम सोते या झीले ढूढना जरूरी नही है। इजीनियर कहते है कि हम इन्हे स्वयं बना सकते है।

जमीन मे दो बहुत गहरे कूप खोदे जाते है और धरातल के बहुत नीचे उन्हे एक दूसरे मे जोड़ दिया जाता है। एक कूप में से ठंडा पानी गरम सस्तरो तक भेजा जाता है, दूसरे कूप में से गरम पानी और भाप ऊपर निकलते है।

भूमिगत ऊष्मा तो सभी जगह है, ससार के हर कोने में। मास्को के नीचे भी और सहारा के नीचे भी, और उत्तरी इलाकों – टुड्रा – मे भी। और टुंड्रा मे तो, जैसा कि एक गाने मे कहा जाता है, "बारह महीने जाड़े के होते है, बाकी गर्मियों के", सो भूगर्भ की ऊष्मा वहा बहुत ही उपयोगी हो सकती है। वैसे तो यह ऊष्मा उस ऊर्जा का रत्ती भर हिस्सा ही है, जो पृथ्वी के नाभिक में है। यदि लोग उस तक पहुंच पायें, तो फिर वे हजारो साल तक चैन से काम कर सकते।

लेकिन ऐसा करना अंतरिक्ष मे जाने से कही अधिक कठिन है। अभी तो लोग कूपो की मदद से ही भूमिगत गहराइयों में "झांक" रहे है। ये कूप विशाल बरमों से

खोदे जाते है। कुछेक किलोमीटर लंबे फ़ौलादी पाइप, जिनके आगे यात्रिक दांत–बरमा–लगा होता है, धीरे-धीरे घूमते है और एक-एक मीटर करके नीचे बढते जाते है। अधिक गहराई पर पाइपों का लबा स्तम्भ अपने ही वजन से टूट जाता है। भूमिगत यात्राओ के लिए तो कोई बिल्कुल भिन्न उपाय सोचना पडेगा। हो सकता है कोई नया यान–भूगर्भयान।

यह देखकर कि छछूदर किस तरह जमीन मे बिल खोदता है, सोवियत वैज्ञानिको ने एक भूगर्भयान बनाया है। यह तेज दातो से जमीन को खोदता है, फिर सिर घुमाते हुए उसे अपने तले दबाता जाता है और जल्दी-जल्दी आगे बढता है।

इस यात्रिक "छछूंदर" में मजबूत फौलादी दांत, पक्की घूमती गर्दन और बारूद इजन लगाये गये। परीक्षण के दौरान यह बहुत गहराई तक–सात किलोमीटर–चला गया था।

सो हो सकता है एक दिन किसी वैज्ञानिक कथा मे नही, बल्कि अखबार में हम यह समाचार पढे कि भूगर्भयान मे पृथ्वी के केन्द्र तक अभियान दल गया।

विद्युत मांसपेशियां

तुमने इस बात पर ध्यान दिया है कि हर अध्याय में हम बिजली को
द करते हैं? चाहे ताप ऊर्जा की बात हो रही हो, या परमाणु अथवा
न की ऊर्जा की, अंततः हम बिजलीघर की चर्चा जरूर करते हैं।

ताप ऊर्जा का एक तिहाई भाग लोग विद्युत ऊर्जा के उत्पादन में
र्च करते है। नदियों से हम जो ऊर्जा लेते है, वह सारी की सारी विद्युत ऊर्जा ही
न जाती है। नाभिकीय ऊर्जा भी हमें तभी चाहिए, जबकि वह विद्युत ऊर्जा में
पातरित हो।

विद्युत – ऊर्जा का सबसे "दक्ष" रूप है। यह सभी कुछ या प्रायः सभी कुछ कर
सकती है।

हमारे युग के अलग-अलग नाम रखे गये हैं। कोई इसे नाभिकीय युग कहता है, कोई राकेट युग, तो कोई अंतरिक्ष युग। लेकिन सबसे अधिक सही नाम विद्युत युग ही है।

यह बात सिद्ध करने की कोई जरूरत नही है। अपने इर्द-गिर्द एक नजर डालना ही काफ़ी है। हमारे घरों में बिजली का प्रकाश है, वैक्यूमक्लीनर, टेलीविजन, रेडियो, इलेक्ट्रिक शेवर, लिफ़्टें, आदि हैं। सड़कों पर ट्रामें चलती हैं। बिजली की रेलगाड़ियां जमीन पर चलती है और जमीन के नीचे भी। बिजली से ही कारखानों में लगी अरबों मोटरें चलती है, कम्प्यूटर काम करते हैं। यदि सहसा बिजली न रहे, तो हमारा जीना ही दूभर हो जाये।

प्रकृति में बिजली उपयोगी रूप में नही मिलती। हां, बिजली कड़कती है। लेकिन इससे क्या। प्राकृतिक भंडार से हम तैयार बिजली नही पा सकते, जैसे कि कोयला, तेल या जल-ऊर्जा पाते है। विद्युत ऊर्जा की खोज करने, उसे मनुष्य की सेवा में लगाने का श्रेय मानव बुद्धि को ही है।

कहते हैं, बहुत पहले इटली में प्रोफेसर लुईजी गैल्वनी अपने घर पर विद्यार्थियों की कक्षा ले रहे थे। अंगीठी के पास उनकी पत्नी मेंढक साफ कर रही थी और उन्हें चांदी की तश्तरी में रख रही थी। पति की बातें सुनते-सुनते उनके हाथ से चाकू छूट गया। वह मेंढक की टांग पर गिरा, जिसकी चमड़ी उतरी हुई थी; चाकू का दूसरा सिरा तश्तरी से छू गया। तभी टांग थी फड़फड़ाई, मानो मुर्दा मेंढक तश्तरी में से कूद भागना चाहता हो। श्रीमती गैल्वनी ने यह बात अपने पति को बताई। उन्होंने

यह प्रयोग कई बार दोहराया और इस निष्कर्ष पर पहुचे कि उन्होंने "जैव विद्युत" की खोज की है। गैल्वनी का ख्याल था कि यह विद्युत शरीर मे उत्पन्न होती है और मासपेशियों व मस्तिष्क के काम का सचालन करती है।

लेकिन विलक्षण भौतिकविज्ञानी अलेस्साद्रो वोल्टा ने ही इस रहस्य को ठीक-ठीक समझा। उन्हे "जैव विद्युत" मे विश्वास नही था, वह यह मानते थे कि गैल्वनी के प्रयोगो मे मेंढक कोई माने नही रखता। वोल्टा का कहना था कि बिजली तो दो भिन्न धातुओ – लोहे और रागे – के सम्पर्क से पैदा हुई। मेढक की टाग तो बस चालक थी। वैसे ही जैसे तावे की तार। और नौ साल बाद उन्होने यह बात सिद्ध कर दिखाई। उन्होने तावे और जस्ते की प्लेटों से विद्युत ऊर्जा का स्रोत – वोल्ट स्तम्भ – बनाकर दिखाया। और गैल्वनी के सम्मान मे इसका नाम "गैल्वनी वैटरी" रखा।

अनेक वर्षो तक ये बैटरिया विद्युत के रहस्यो का अध्ययन करने मे वैज्ञानिको के काम आती रही। इनसे ही पहले विद्युत चुम्बको को बिजली मिली। इनसे रूसी भौतिकविज्ञानी वसीली पेत्रोव ने विजली का पहला लैम्प – वोल्ट चाप – जलाया।

लेकिन वोल्टा की बैटरियो की क्षमता वहुत कम थी। पर्याप्त विद्युतधारा पाने के लिए प्लेटों से बडे-बड़े, भारी-भरकम खम्भे बनाये जाते थे, इसीलिए इन्हे स्तम्भ कहते थे।

पिछली सदी के आरम्भ मे लदन की एक जिल्दसाजी की दुकान पर चौदह साल का एक लड़का काम सीखने के लिए आया। गरीव लौहार के इस वेटे ने प्राथमिक शिक्षा भी नही पाई थी। लेकिन वह जिज्ञासु था और उसे पढने का शौक था। लडके का नाम था माइकल फैराडे। एक बार 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रितानिका' (ब्रिटिश विश्वकोश) के मोटे खण्ड की जिल्द बाधते समय उसने उसमे विद्युत के बारे में लेख पढा। विद्युत के चमत्कारी गुणों की कहानी से वह वहुत प्रभावित हुआ। लोहे की पुरानी चीजों और तारों के टुकड़ों से वह भाति-भाति के विद्युत उपकरण बनाने तथा उन पर प्रयोग करने लगा।

फैराडे ने यह पता लगाया कि जिस तार मे से विद्युत धारा जा रही होती है, उसके इर्द-गिर्द सदा चुम्बकीय क्षेत्र होता है। लोहे के चूरे मे वने घेरे याद है न? बस वैसा ही। "विद्युत चुम्बकत्व में परिवर्तित होता है!" उन दिनो की वैज्ञानिक पत्रिकाओं में लिखा जाता था।

फैराडे ने सोचा यदि विद्युत चुम्बकत्व मे परिवर्तित होता है, तो इसके

४ करने की कोशिश की जाये? यह बात कभी भूलें न, इसके लिए फ़ैराडे ने अपने कोट की जेब में दो चुम्बक रख लिये। फैराडे ने सैकड़ों प्रयोग किये, दसियों उपकरण बनाये। अन्त में नौ साल के परिश्रम के पश्चात १८३१ में एक वैज्ञानिक पत्रिका में एक चित्र छपा: दो चुम्बकों के बीच तांबे का पतला चक्र और पास ही चुम्बकीय सुई। जब चक्र घूमता है, तो चुम्बकीय सुई भी घूम जाती है। जब चक्र रुक जाता है तो सुई पहले वाली स्थिति में लौट आती है। फैराडे ने इसकी यह व्याख्या दी कि चक्र के घूमने पर चुम्बक उसमें विद्युत धारा पैदा करते हैं। विद्युत धारा से चुम्बकत्व बनता है और सुई घूम जाती है। तुमने ध्यान दिया: "घूमने पर"? चक्र घूमता नहीं तो विद्युत धारा भी नहीं बनती। इसके बारे में अब हम यह कहते हैं: गति की यांत्रिक ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाती है।

फैराडे के उपकरण का नाम विद्युत यांत्रिक जेनरेटर ही रखा गया, अर्थात ऐसा यंत्र जो यांत्रिक ऊर्जा से विद्युत ऊर्जा "बनाता" है। वैसे, सचमुच का जेनरेटर तो तीस साल बाद ही बनाया जा सका था। लेकिन फैराडे के प्रयोगों से ही आधुनिक विद्युत ऊर्जा उत्पादन का मार्ग प्रशस्त हुआ। और आज प्रायः सारी विद्युत ऊर्जा विद्युत यांत्रिक जेनरेटरों से ही प्राप्त होती है। इनके नाम भले ही अलग-अलग हैं। यदि जेनरेटर

पर यह विद्युत है क्या ? पाठ्यपुस्तकों मे लिखते है विद्युत धारा इलेक्ट्रोनो का प्रवाह है। तुम्हें याद है न परमाणु कैसे बना होता है ? केन्द्र मे नाभिक होता है और इसके इर्द-गिर्द इलेक्ट्रोन मडराते रहते है, मानो नाभिक के खूटे पर बधे हुए हो। पता चला है कि इलेक्ट्रोन इस "खूटे" पर समान रूप से नही बधे होते। कुछ "कसकर" बधे होते है, और कुछ इतने "कसकर" नही। ये "ढीले बधे" इलेक्ट्रोन ही धारा बनाते है। ये सहज ही अपना परमाणु छोडकर घुमक्कड बन जाते है। धातुओ मे ऐसे इलेक्ट्रोन विशेषत अधिक होते हैं और उनमे वे बेतरतीब घूमते रहते है। कभी पराये घर–परमाणु–में घुस जाते हैं, कभी फिर घूमने लगते है। लेकिन इलेक्ट्रोनो की यह बेतरतीब गति धारा नही होती। विद्युत धारा तब बनती है, जब सभी मुक्त इलेक्ट्रोन एक ही दिशा मे चलने लगते है। जैसे एकतरफा यातायात वाली सडक पर कारें। कारो को तो ड्राइवर चलाते है और विद्युत यात्रिक जेनरेटर के तारो मे इलेक्ट्रोनों को चलाते है चुम्बक। वे ही सभी इलेक्ट्रोनो को एक दिशा मे गतिमान करते है।

विद्युत ऊर्जा तो लोगों के जीवन मे सचमुच की क्राति लाई।

फ़ैक्टरियों मे भाप की मशीनो की जरूरत नही रही। उनका स्थान बिजली की मोटरो ने ले लिया। बिजली के तार ऊर्जा पहुचाते है और मोटर उसे गति मे परिवर्तित करती है। हा, परिवहन साधनों में यह बिजली की मोटर पेट्रोल के इजन का स्थान नही ले पाई क्योंकि हवाई जहाज या कार तो अपने साथ बिजली के तार नही खीच सकते। पर यहा भी एक रास्ता खोज लिया गया। रेल लाइन के ऊपर और सडको के ऊपर बिजली के तार खिंच गये। विद्युत जेनरेटर से विद्युत धारा इन तारों में जाती है। ट्रेन, ट्राम या ट्रालीबस का चाप इन तारो पर चलते हुए इनसे बिजली पाकर इजन तक पहुचाता है और इंजन पहिये घुमाता है।

हमारे घरेलू जीवन मे बिजली ने क्या कुछ किया है, यह बताने की तो जरूरत ही नही। तुम्ही बताओ क्या तुम बिजली के लैम्प के बिना रह सकते ? या टेलीविज़न, कपड़े धोने की मशीन, लिफ़्ट, टेलीफोन के बिना ? कहने की बात ही नही, इन सबके बिना जीवन बहुत कठिन होता और नीरस भी। न सिनेमा देख सकते, न रेडियो सुन सकते।

वैसे बात सिनेमा की ही नही है। बिजली तो हमारे उद्योगों के लिए सर्वप्रमुख ऊर्जा है।

बिजली पाने के लिए लोग तीन शृखलाओं का उपयोग करते है।

सबसे प्रमुख शृखला है–ईंधन शृंखला। आजकल इसकी मदद से नब्बे प्रतिशत बिजली

पाई जाती है। दूसरे स्थान पर हैं पनबिजलीघर। इनसे लगभग पांच प्रतिशत
बिजली प्राप्त होती है। अंतिम स्थान पर है परमाणु बिजलीघर।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सदा ऐसे ही रहेगा। बीस-तीस साल
बाद ही सब कुछ बदल जायेगा। परमाणु बिजलीघर आधी से अधिक बिजली देने
लगेंगे। लोग ईंधन की बचत करेंगे, जो आज ही इतना अधिक नहीं रह गया है। और
लगभग पचास वर्ष बाद तो ताप बिजलीघर विरले ही हो जायेंगे। जैसे कि आज
भाप-इंजन है।

बिजलीघर से बिजली नदी की तरह बहती है। नदी की ही भांति इसका पाट होता
है – बिजली का तार, और सचमुच की नदी की ही भांति अपना उद्गम स्थल – जेनरेटर।
नदी की तरह बिजली भी ऊर्जायुक्त होती है और तरह-तरह की मशीनें – चक्की, घन,
खरादे आदि – चलाती है। सचमुच की नदी हजारों छोटी-छोटी जल धाराओं से मिलकर
बनती है, और बिजली का प्रवाह इसके विपरीत बड़ी, फिर उससे छोटी और
फिर बिल्कुल छोटी नदियों में बंटता चला जाता है। पहले तो बिजलीघर से विद्युत
प्रेषण लाइनों से सशक्त प्रवाह जाता है। ऊंचे-ऊंचे खम्भों पर लगी ये लाइनें तुमने नगरों के
बाहर, खेतों और जंगलों में देखी होंगी। फिर सबस्टेशनों पर यह प्रवाह विभाजित होता है।
इसका एक भाग नगर को जाता है, दूसरा गांवों को। नगर को गई धारा फिर
नगर के इलाकों की धाराओं में बंटती है। इलाकों की धाराएं मिलों, कारखानों, सड़कों की
धाराओं में। और इस तरह छोटे से छोटे टेबल लैम्प, टेलीविजन और खराद
पर लगी मोटर तक बिजली पहुंचती है। अपनी यात्रा के अंत में बिजली प्रकाश, पर्दे
पर चित्र, बरमे की गति, हीटर की या विद्युत भट्ठी की गरमी में बदल जाती है।

बिजली हर लिहाज से अच्छी है। पर लोग उसकी कमियां भी जानते हैं। पहली बात
उन्हें इसे पाने की विधि पसंद नहीं है। शृंखलाएं बहुत लंबी हैं। खास तौर से वे जिनमें ऊष्मा
बिजली में रूपांतरित होती है।

बिजली बनने से पहले ऊर्जा को कितनी बार अपना रूप बदलना होता है! पहले
ईंधन जलता है और ऊष्मा निकलती है। फिर बायलरों में पानी उबालकर भाप बनाते हैं।
भाप का दाब गति में बदलता है। और इसके बाद ही कहीं बिजली प्रकट होती है।
सौ साल पहले भी और आज भी "शृंखला" जैसी की तैसी ही है। इस लंबे रास्ते में बहुत
अधिक ऊर्जा व्यर्थ जाती है। और यह मानवजाति व प्रकृति के लिए बहुत महंगा पड़ता है। हर
दूसरा टन ईंधन हम खाली जलाने के लिए, "हवा को गरम करने" के लिए ही पाते
हैं। ताप मशीनें इससे अधिक अच्छी तरह काम नहीं कर सकतीं। सो वैज्ञानिकों ने

सोचा कि इन मशीनों को शृंखला में से हटा देना चाहिए। ऊष्मा सीधे विद्युत ऊर्जा का रूप ले। और उन्होंने नई मशीनें बनाई – चुम्बकीय हाइड्रोडायनेमिक जेनरेटर। "हाइड्रो" का मतलब है "जल"। लेकिन वास्तव मे इन जेनरेटरो मे कोई पानी-वानी नही होता। इनमें होती है परितप्त गैस – प्लाज्मा। हम जानते है कि यह विद्युत आवेशयुक्त कणों से बना होता है। इस गैस को चुम्बको के बीच से गुजारा जाता है, जो कणो को "छांटते" है। धन (+) आवेश वाले कण एक ओर, ऋण (–) आवेश वाले कण दूसरी ओर। दो प्लेटो पर कण जमा होते जाते है। यदि इन प्लेटो को तार से जोड दिया जाये, तो उसमें विद्युत धारा बहने लगेगी। और आगे तो सब पता ही है। लेकिन यह कहना ही आसान है असल मे ऐसा कर पाना बहुत ही कठिन है। बडी मात्रा मे गैस को प्लाज़्मा में बदलना कठिन है। इसके लिए उच्च तापमान और अत्यधिक ईंधन चाहिए। ऐसी गर्मी मे मशीन के पुर्जों को सही-सलामत रखना कठिन है। और भी बहुत सी कठिनाइयां है। इसलिए ऐसे बिजलीघर अभी बहुत कम है।

बिजली की दूसरी कमी उसे पाने से नही उसे प्रेषित करने से जुडी हुई है। आज जिन "नदियो" मे बिजली की धारा बहती है, वे है – विद्युत प्रेषण लाइने। और इनमे कई कमियां है। इनमें बहुत अधिक ऊर्जा व्यर्थ जाती है, ये लाइने बहुत अधिक स्थान घेरती है, बहुत महगी होती है और शहर की तग सडक की भाति इनसे अधिक प्रवाह जा भी नही सकता। आगे हमे अधिक ही अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होगी, और उसके लिए ये लाइनें भी अधिक बनानी पड़ेगी।

इंजीनियरो ने एक नया तरीका सुझाया है। ऊर्जा को "जमाकर" प्रेषित किया जाये। पता चला है कि कुछ सामग्रियों को यदि अच्छी तरह जमा दिया जाये, तो वे ऊर्जा को व्यर्थ किये बिना ही एक स्थान से दूसरे पर पहुचा देती है। पतले से जमे हुए तार में इतनी ही बिजली जा सकती है, जितनी अच्छे-खासे लट्ठे की मोटाई के केबल मे। तो इस तरह विद्युत लाइनों के भारी-भरकम जाल की जरूरत नही रहेगी, मूल्यवान तांबे की बचत होगी, उपभोक्ता को अधिक ऊर्जा प्राप्त होगी और खेती के लिए बहुत सा स्थान खाली हो जायेगा।

द्रव हीलियम से तारों को जमाया जाता है। इसके लिए धातु के पाइप में तार खींचा जाता है और फिर उसमे हीलियम गैस भरी जाती है। बहुत मुमकिन है कि निकट भविष्य मे बिजली की हवाई नदियों के स्थान

तो लो हमारी किताब खत्म हो गई। हम यह क़बूल करते है कि सब बातें हम नही बता सके, और न ही ऐसा करने का हमारा इरादा था। बता इसलिए नही सके, कि किताब छोटी सी है। और इरादा इसलिए नही था कि इन जटिल बातों के बारे में बहुत सी गम्भीर वैज्ञानिक पुस्तकें लिखी गई है और लिखी जा रही है।

और यह पुस्तक तो लोगों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण एक क्षेत्र से तुम्हारा पहला परिचय कराती है। इस क्षेत्र का नाम है ऊर्जाविज्ञान।

पाठकों से

रादुगा प्रकाशन इस पुस्तक की विषयवस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।

कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

रादुगा प्रकाशन,
१७, जूबोव्स्की बुल्वार,
मास्को, सोवियत संघ।